उग्र रचनावली—११

शराबी

लेखक

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'

प्रकाशक



प्रथम संस्करण

मूल्य दो रुपये


शराबी

शरारती-निर्माता



जवाहर उसी छोकरी का नाम है, जो कला की दृष्टि से विचित्र सुनी जाती है। लोग कहते हैं, वह अधिक-से-अधिक सत्रह साल, कुछ महीने और कुछ दिनों की होगी। साथ ही, लोग यह भी कहते हैं, कि एकाएक सामने आने पर, या परिचय कम होने पर, वह ठीक छोकरी सी मालूम पड़ती है।

लोग ही नहीं, रतनपुर की लुगाइयाँ भी, आये दिन, उसके बारे में कुछ-न-कुछ कहा-सुना करती हैं, मगर 'लोगों' की धारणा जवाहर के बारे मे जैसी है, 'लुगाइयों' की उसके बिलकुल विपरीत है।

वे उसे 'कलमुहीं' कहती हैं और जो पुरुष जवाहर के पास आता-जाता है, उसका मुँह—रतनपुर के कलक्टर मिस्टर वुड-सा गोरा होने पर भी—उन्हे 'काला' नजर आता है। जभी किसी मुहल्ले की चन्द सासें या पतोहुएँ एकत्र होती हैं, तभी उसी कलमुहीं की चर्चा होने लगती है।

"वह डायन है, डायन।" वूढियाँ घृणा से मुख की झुर्रियाँ सिकोड़ती हुई कहती हैं—"शहर के कितने गुलाबी बच्चो का रक्त वह पी चुकी है, पी रही है। न-जाने क्यों भलेमानुस लोग ऐसी डाकिनियो को अपने बीच पनपने देते हैं।"

"ऐसी चमकीली चुड़ैल!" घाट पर, बाट में या दोपहर-शाम को अपने अपने दरवाजो पर खडी होकर पति-वञ्चिता अभागिनियाँ कहती हैं—"उसकी जिसपर एक बार भी नजर पड़ती है, वह अपनी गृहस्थी की परी को भी भूल जाता है। वह टोना जानती है, वह जादू जानती है। ओह रे, कहीं वह दिखाई पड़ जाय, तो झोंटा पकड़कर उसका मुँह नोच लिया जाय।"

मगर, 'लोगों' की राय कुछ और ही है। एक दो अप वादों को छोड़ बाक़ी सभी बूढ़े-जवान, किसी न किसी ढङ्ग से उसकी प्रशंसा ही करते हैं। संभव है, किसी अन्य शहर के सभी बूढ़े सघटित रूप से कोई सभा, समिति या संस्था स्थापित कर, प्रस्ताव पेश कर, पास कर, दुःख से दहलते या शोक से सिसकते हुए उस छोकरी के अस्तित्व का विरोध करते, मगर, रतनपुर के बूढ़े ऐसे नहीं। वे जवाहर-सी छोकरियों के प्रति इस तरह के विचार रखनेवाले को 'सूरा' समझते हैं। यह ठीक है, जवानों की तरह वे मौके बेमौके, सर पर पाँव रखे, उसकी गली की ओर दौड़ते नहीं नजर आते, लेकिन, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, दशहरा, दिवाली के दिन—बिना उसकी विशेषता की सहायता के—वे न तो राम को जान पाते हैं और न कृष्ण को। सच-सच-सच, यह जादूगरनी प्रत्येक पावन पर्व पर परमात्मा के अङ्गों की देहलियों पर, अपने जागते जादू की जोति जगमगाती देखी जाती है।

रतनपुर में चार साढ़े-चार बजे दिन के बाद कोई घूमने निकले। आँखें जरा सतर्क रखकर नवयुवकों को निहारे और जिसके तन पर अद्धी का कुरता भीतर से झाँकती हुई जालीदार रेशमी गञ्जी, सोने के बटन, मखमली किनारे की

मैंचेस्टरी या रेशमी किनारे की मोहनी-'मिलों' धोती, लखनौवा दुपलिया या छोटी फेल्ट टोपी और वार्निश या पेटेण्ट लेदर का पम्प-मुखी जोड़ा देखें, और उनमें से कुछेक को किसी तमोली की दूकान पर या कोने-कोने में या जनसाधारण के वायु-सेवन की जगहों में तल्लीन रूप से बातें करते पावें, तो, फौरन्, बिना हिचके यही समझ लेना चाहिये, कि वे जवाहर के बारे में बातें कर रहे हैं।

एक दिन की यह घटना बहुतों के दिमाग में बहुत दिनों तक ताजी रहेगी। चौमुहानी के पूरबी नुक्कड़ की पान की ऊँची दूकान पर दो नवयुवक और तमोली उसी छोकरी के बारे में पूछताछ कर रहे थे।

"कितनी दूर पर है वह गली, जिधर उसके मकान का पिछवाड़ा पड़ता है ?"

"ओ हो," तमोली ने कत्था-चूना से लाल पन-कपड़े पर छोटे-छोटे उजले पानों को नफासत से पोंछते हुए कहा—"मालूम पड़ता है, आप लोग अभी कोठे पर नहीं पहुँच सके हैं। नहीं तो उसकी पीछेवाली गली जरूर जानते होते।"

"ठीक कहते हो," एक ने स्वीकार किया—"हम अभी वहाँ तक नहीं पहुँच सके हैं। तभी तो दरियाफ्त कर रहे

हैं। सुना है, आधा शहर उसके दरवाजे पर टकराता फिरता है। इसी से और, उधर जाने की हिम्मत नहीं पडी। कोई देख ले, इधर उधर कुछ कह-सुन दे, तो हमारी जान की आफ़त आ जाय।"

"हम लोगों ने," दूसरे युवक ने कहा—"गत शिवरात्रि के दिन नर्मदेश्वर के मन्दिर में उसे गाते सुना था। ओह! खूब गाती है।"

"अच्छा," तमोली ने उत्साह से कहा—"आप लोगों ने केवल उसे गाते ही सुना है। अब एकबार, मेरे कहने से, नाचना भी देखिये। वह इस तरह नाचती है, जैसे भोरहरी की हवा में अलसी का फूल। जैसे राजा रामरूप के ऐश-बाग में, उस बड़े तालाब में, रिम झिम बरसते सावन में, छोटी बडी लहरोंपर, हंसिनी नाचा करती है।"

"सच!"

"हाँ, मालिक! यह तो मशहूर बात है।"

"तुम तो उसकी तारीफों के पुल बाँधे दे रहे हो।"

"जो उसके करतब देखकर, उसके हुनर को परखकर, उसकी तारीफ न करे, वह या तो अंधा है, या उल्लू। हा-हा-हा-हा! सच मानियेगा बाबूजी।" तमोली ने चार पान एक युवक के हाथ में भाव से दिये।

"सुना है," उस युवक ने कहा जिसे अभी पान नहीं मिला था—"उसकी कोई माँ भी है।"

"अजी वह माँ नहीं है।" तमोली ने कत्थे की लकडी से पान पर गहरी कत्थई रेखा खींचते हुए कहा—"वह तो उस गली की बे-कार और पुरानी पतुरिया है। नाक उसकी चपटी है, आँखें उसकी भीतर को ओर धँसी हुई। मुँह सिकुडकर अध-सूखे, रोगी, बडहर-सा हो गया है, कमर कमान की काकी बनी हुई है, मगर जवाहर को पाकर वह लोभ की मूरत बन गयी है। अभी परसाल तक उसका कोई पुर्साहाल नहीं था। गली में इधर-उधर घूमकर वह कमजोर दिल दिलदारों को यहाँ या वहाँ पहुचाने का दावा करती फिरती थी। कोई उसे बनाता था, कोई चिढाता, कोई दुत्कारता, मगर किस्मत उसकी जरूर चोखी है। तभी तो, इस गुज़रे ज़माने में, यह जवाहर आसमान से, छप्पर से, उसके घर में फट पड़ी है।"

कुछ और पूछताछ कर दोनों युवक उसकी गली की ओर बढे। तमोली अपने दूसरे 'बाबुओं' 'सरकारों' या 'मालिकों' को नजाकत से पान बना बना कर देने और प्राय सबसे जवाहर का विज्ञापन करने लगा। न तो लोग उसके बारे मे पूछते हुए थकते थे और न वह तमोली थकता था उसकी तारीफ करते हुए।

शराबी

रात के ग्यारह बजते बजते इधर से लौटे हुए कुछ पान-प्रेमियों ने उसे बताया कि, जवाहर के घर पर पुलीस की पलटन कसी हुई है। वहाँ दो-दो खून हो गये हैं।

' कौन कौन मारा गया ? किसने मारा ? क्यों मारा ?"
आश्चर्य से, बिना सुपारी के ही पान लपेटते हुए, तमोली ने सम्वादवाहकों से पूछा।

"उसका कोई यार था ?"

"उसके हजार यार हैं।"

"कोई खास था, उसने नौकर रखा था ?"

"अच्छा।"

"आज जब वह आया तब जवाहर दो युवकों से किल-किल खेल रही थी। उसका यार पीकर आया था।"

तमोली अफवाह सुनानेवाले का मुँह घुरेरता रहा।

"उसने जवाहर को पुकारा, वह नहीं गयी। वह सीधे युवकों के ओर उसके सामने आ फटा। भागो यहाँ से—उसने नशे में कहा—यह तुम्हारी बहन नहीं, मेरी जान है। रखेली है। इसको जवाहर ने अपना अपमान माना। उसने नौकर को पुकार कर यार को बाहर निकाल देने को कहा।"

"अच्छा—अच्छा।"

"युवकों ने भी कहा—हमने रुपये दिये हैं। इतनी देर तक यहाँ बैठने का हमारा ठेका है। यह आपका घर नहीं, बाजार है। कुछ और भी बातें हुईं और धड—धड़—धड़। जेब से पिस्तौल निकालकर उसने तीन फायर युवकों पर और एक जवाहर पर किया। साथ ही चिल्ल पों मचते-मचते नौ दो ग्यारह भी हो गया। वह लखरामदास जो लखपती हैं, उनका लडका था।"

दूसरे दिन ठीक ठीक खबर रतनपुर वालों को मिली। युवक वही दोनों थे जो तमोली से पूछ ताछ कर रहे थे। उन में से एक तो जहाँ का तहाँ बेदम हो गया, मगर दूसरा, कमर के जरा ऊपर, घायल होकर रह गया। जवाहर की भी दाहनी कलाई जख्मी होकर बच गयी। रात-भर लख रामदास के घर और बाग में, उनके पुत्र की पुलीस ने जबरदस्त खोज की, मगर सुबह के पहले वह नहीं मिला।

शहर की दक्खिनी ओर नवाबी जमान का खंडहर है। वहीं दूसरे दिन लखरामदास का लायक लाल मिला। पिस्तौल उसके हाथ मे थी और जान उसके हाथ के बाहर।

उस दिन से जवाहर जिले भर में, कमिश्नरी भर में, बल्कि सूबे भर में मशहूर हो गयी।

शराबी

हीरा उन लुगाइयों में से एक का नाम है, जिनके पति रत्न जादूगरनी जवाहर द्वारा लूट लिये गये हैं। यदि कहीं विधाता हो और उनका काम चराचर के कपाल में सुख-दुख की रेखाएँ सँवारना हो, तो, निस्सन्देह, उन्होंने हीरा की रेखाएँ सजाने में कमाल किया है। वह बेचारी जब तक अनजान था, कमसिन थी, अनखिली कली थी, तब तक भली-भली थी। उसकी चारो ओर का ससार अपार प्यार से भरा था। उसके एक एक बालिका सुलभ, सादे, भ्रुकुटि विलास को पलकों पर ओढ कर आनन्द लेनेवाले, एक नहीं, अनेक थे। उसकी माँ, उसकी भाभी, भाई, पिता। ओह! उसको कौन नहीं प्यार करता था।

बचपन में उसके स्वभाव की जो विशेषता थी, वही जवानी में खराबी समझी जाने लगी। आरम्भ ही से वह आकर्षक और मिलनसार थी। पालतू, पढी मैना की मधुर बोली सी उसकी पिट पिट बातें लोगों को रुचती थीं। वह खूब बातूनी और निर्भय थी। उसके सर्वप्रिय स्वभाव का उदाहरण वह घटना है, जो उस समय की है जब वह तीन



बरस और कुछ महीने की थी। एक दिन प्रात काल पडोसी के लडके के साथ—जिसकी उम्र उससे कुछ ही महीने अधिक थी—वह खेल रही थी। दोनो गली में बैठ कर चारो ओर की धूल अपने सामने इकट्ठी कर, घरौंदे बना रहे थे।

धूल के ढेर से, दोनों हथेलियो से, एक मोटी, भद्दी, टेढी-मेढी रेखा अपने सामने खींचकर, उसे जरा चौकोर और ऊँचा बनाकर, पड़ोसी के लडके ने कहा—"हूँ, हीरा, यह मेरा महल है।"

उसी तरह और उससे भी अधिक मोटी और भद्दी रेखा अपने आगे सजाकर हीरा ने धूल में सनी रूखी और घनी लट को पीछे की ओर लापर्वाही से फेकते हुए कहा—"इसे देखो! यह उस महल से बडा है, अहाहा, कैसा बढिया है। यह मेरा महल है।"

लड़के ने स्वाभाविक स्पर्द्धा से देखा, सचमुच हीरा के सामने अधिक धूल थी। उसका महल बडा था। पडोसी दूसरे पड़ोसी की इस मृण्मयी-महानता को न सह सका।

"मैं तेरा महल बिगाड़ दूँगा।" उसने बालावेश से कहा। साथ-ही-हाथ भी बढाया।

"मैं भी तेरा बिगाड दूँगी—हूँ, मैं किसी से कमजोर हूँ? खबरदार, इधर हाथ न बढाना।"

"क्या कर लेगी ?"

"ऐसा घूँसा मारूँगी कि, चिल्लाता भाग खड़ा होगा ।"

"मैं अपनी माँ को पुकारूँगा ।"

"उसको भी मारूँगी, झोंटा पकड़कर ।"

"मैं बाबा को बुला लूँगा—तब ? वह तेरे कान पकड़-कर तीन तमाचे जड़ देंगे । पें पें चिल्लाने लगेगी ।"

"हूँ—" लीला से चमक कर हीरा ने कहा—"मैं भाग जाऊँगी और दूर से ऐसा ढेला मारूँगी कि, तेरे बाबा की खोपड़ी लाल-लाल हो जायगी ।"

"मैं तो बिगाड़ता हूँ तेरा महल, देखूँ क्या कर लेती है ? डायन !" लड़के ने लात मारकर हीरा का महल धूल में मिला दिया । इस पर वह भी झपटी, उसका घर बिगाड़ने के लिए । लड़के ने हाथ बढ़ाकर विरोध रूप में उसका मुँह खरोंच लिया । वह भी भिड़ पड़ी, चढ बैठी उसकी छाती पर । खूब गुत्थमगुत्था हुआ । लड़के ने हीरा की गर्दन पर, खीझकर, अपने दाँतों से काले निशान बना दिये और हीरा ने उसकी छाती पर अपनी उँगुलियों को छाप दिया । हल्ला मचा । दोनों के नजदीकी उन्हें सुल-झाने के लिए दौड़ पड़े, लेकिन, शरीर से सुलझ जानेपर भी उनका मुँह तू-तू-मैं-मैं में उलझा ही रहा । लड़का अपनी

माँ की गोद से बोला—"ठहर, डायन ! मैं घर में से डण्डा निकालकर तेरी खोपडी चूर-चूर किये देता हूँ।" अपनी माँ की बगल में अकडकर खडी हीरा कहने लगी—"मैं अपने बाबा की तलवार लेकर आऊँगी—तब ? तब तेरा डण्डा क्या कर लेगा ? मैं तेरी गर्दन काट लूँगी, तेरी लाठी की गर्दन भी—कच कच कचसे—काट दूँगी।"

लोगो की नजर में वह जब तक 'रतनपुर की लडकी' रही, तबतक पडोसी का वह लडका ही हीरा का सबसे प्यारा साथी था। तब तक वह सुखी और खिली भी खूब थी, लेकिन, जिस दिन से लोग उसे 'रामपुर की वधू' भी समझने लगे, उसी दिन से पडोसी के लडके, हीरा और उनके सहज सुखो के बीच में रामपुर वाले, मनहूस, परदे-सा—आ पडा। ब्याह की बात-चीत चलते ही उसके पिट-पिट बोलने का विरोध होने लगा। पहले लोग उसे छेडकर बोलवाते थे, अब जरा भी बोलने पर छेडने लगे। कभी उपदेश की कनेठी से उसके सरल स्वाभाव के कान लाल करने और कभी तीखी नजरो से उसके अल्हड मन की छाती छीलने लगे।

उसकी माँ सूने मे समझाती—"अरी मुर्झौसी, लडकपन छोड। चारों ओर झोंटा फैलाकर डाकना-कूदना बन्द कर और उससे—उससे—समझी ?—ही्ही-ठीठी भी रोक।

अब तू दूसरे के घर जायगी। तेरा ऐसा ही मिज़ाज रहा, तो, वहाँ अपनी नाम हँसाई होगी।"

माँ की इन बातों और लोगों के उपदेशों तथा विरोधों का हीरा पर असर ही नहीं पड़ा, यह ठीक नहीं। वह मन-ही-मन अपने मन की रोक थाम करने लगी। पर, यह काम उसे बहुत अस्वाभाविक एव दु ग्वद मालूम पड़ा। शायद वह विवाह नहीं चाहती थी, शायद 'रामपुर' शब्द भी उसे भयावना, नीरस, और क्रूर मालूम पड़ता था, शायद उसे बोलने और घूमने का यह परदा नामञ्जूर था।

विवाह होते होते—धीरे धीरे—उसने कम बोलने, मुँहपर हमेशा घूँघट रखने, आँचल सँभालने और धीरे-धीरे चलने का अभ्यास आरम्भ किया। अब पड़ोस के लड़के जब दरवाजे से पुकारते—"हीरा" तो वह टूटकर घर से बाहर नहीं फट पड़ती। अब तो वह यहाँ तक नहीं बोलती कि—"तुम जाओ, मैं न खेलूँगी।"

विवाह हो जाने के पन्द्रह दिनों बाद एक दिन हीरा, चूनरी और विविध नये गहने पहने, पाँवों में लाल-लाल महावर लगाये, झम्म-झम्म करती हुई किसी के घर जा रही थी—अकेली और अनमनी। एकाएक पीछे से किसी ने उसकी दोनों आँखें बन्द कर लीं। वह भय से, प्रेम से, स्मरण

से—न-जाने कैसे, न जाने क्यों—कण्टकित हो गयी। वह समझ गयी, आँखें मूँदनेवाला उसका प्रिय साथी वही पड़ोसी था।

"अब मुझे ऐसे न पकड़ा-छुआ करो, मानिक! माँ मना करती हैं। भागो जल्दी यहाँ से।"

माँ के मना करने का मतलब मानिक को शायद मालूम था। तभी तो, फौरन, हाथ खींचकर वह हीरा का मुँह ताकने लगा। हीरा की आँखें—परीशान और मौन और सिमटी-सी थीं। उनमें वह प्राकृतिक असावधानी नहीं थी, जिसे अधिक-से अधिक देखने के लिए मानिक सदैव सावधान रहा करता।

"इसमें कोई बात नहीं हीरा," वह धीरे से बोला—"महीने भर से तो तुम गली में कभी निकली ही नहीं। ओह, मैं रोज तुम्हें ढूँढा करता था। खूब अच्छी लगती है यह चूनरी तुम्हारे तन पर हीरा! और यह गहने—और यह महावर। ओहोहो, मैं लड़की न हुआ, नहीं तो, एक दिन ज़रूर तुम्हारे-सा सजता।"

शराबी

कुन्दन के बारे में सभी जानते हैं, वह ख़ान्दानी वेश्या है। यद्यपि आज उसकी उम्र तीन बीस और आठ वर्ष की है, मगर, निस्सन्देह एक दिन वह तीन पाँच और तीन वर्ष की भी थी। जब वह अट्ठारह वर्ष की थी, सब लोगों को 'कुन्दन' नाम की सार्थकता, उसके सामने आते ही, दिखाई पड़ती थी। आज तो दुनिया उसे कूड़े से भी कम समझती है।

ज़रा कोई छेड़ भर दे उसके आगे वेश्याओं और उनकी विशेषताओं की चर्चा और फिर उसी के मुँह से उसकी ख़ान्दानी कहानी सुन ले। वह बतायेगी कि, उसकी लकड़-दादी की दादी शाहंशाह अकबर के दरबार में नाचा करती थी। जहाँपनाह ने सूबा आगरा में उसे जागीरें, हाथी, घोड़े, पालकी और महल दिये थे। वह गाने की कला में ऐसी पटु थी, कि मशहूर मियाँ तानसेन से अक्सर उसकी तनातनी रहती थी।

अपनी लकड़दादी का नाम वह 'गुलाबी बेगम' बताती है और बताती है कि, बेगम की पदवी शाहंशाह शाहजहाँ ने उसे दी थी। वह इतनी ख़ूबसूरत और ख़ुश-ख़सलत थी कि बादशाह सलामत सुलताना मुमताजमहल से कम उसकी ख़ातिर नहीं करते थे। जब तक उनके मशहूर और पत्थर-

दिल लडके औरंगजेब ने उन्हे कैद नहीं कर लिया था, तब तक वह अक्सर यही कहा करते, कि, मैं 'गुलाबो बेगम' की यादगार में भी कोई इमारत बनवाना चाहता हूँ। शाहशाह उनकी यादगार में कालेपत्थर का 'ताज,' काशी के सामने बहती हुई गंगा के उस-पार, बनवानेवाले थे।

अगर कोई पूछनेवाला कुन्दन से यह पूछता है, कि शाह शाहजहाँ ने गुलाबी बेगम के काले ताज के लिए काशी को क्यो पसन्द किया था, तो वह गर्व से उत्तर देती है—"क्योंकि हम हिन्दू हैं। चित्रसेन के वंश के चमकते चिराग हैं। हमारी मुक्ति के लिये काशी और गंगा ही सर्वश्रेष्ठ स्थान हैं।"

मगर, अफसोस—वह कहती—आलमगीर बड़ा सूगा आदमी था। 'आदमी' इस लिए कहती हूँ, कि भगवान या खुदा ने न-जाने क्यों उसे आदमी का चोला दे रखा था। नहीं तो, जो सूगा हो—खास कर ताज तख्तदार होने पर भी—वह तो कुछ भी नहीं है। जानवर भी नहीं। उसी ने मेरी लकड़दादी की दादी को—जहर पिलाकर मरवा डाला था, और मेरी परदादी को भी।

"चपाकली" नाम्नी अपनी परदादी की कहानी कुन्दन खूब सुनाती है। कहती है, गुलाबो बेगम की विष हत्या के

शराबी



एक बरस बाद आलमगीर ने अट्ठारह वर्ष की सुडौल पुतली चंपाकली को सूली पर लटकवा दिया। बात यों हुई—जामा मसजिद के उत्तर गुलाबो बेगम के महल में चम्पाकली रहती थी। एक बार रोजे के दिनों में, जुमा के दिन, रमजान की नमाज पढ़ने बादशाह सलामत उस मशहूर मसजिद में तशरीफ ले आये थे। उधर मसजिद में नमाज शुरू हुई, इधर परदादी चम्पाकली ने, इसराज सँभालकर 'पीलू' का रियाज करना आरम्भ किया। वक्त था 'श्यामकल्यान' का—और दादी मेरी पीलू का रियाज करने बैठीं। उस्तादों ने राग-रागिनियों के लिये समय का जो बन्धन लगा रखा है, उसपर उनका विश्वास नहीं था। वह ६ बजे सुबह श्यामकल्यान और ६ बजे शाम को भैरवी गा ही नहीं सकती थीं, बल्कि उसकी तस्वीर सुनने वालों के सामने खड़ी कर देती थीं। शाहजहाँ के जमाने में, दरबारी उस्ताद नाक सिकोड़ते ही रहते और वह दोपहर की मजलिसों में बिहाग और सोहनी और कालिङ्गड़ा छेड़ देतीं। और छेड़ देतीं—इसराज के तारों के साथ साथ—समझदारों की छाती की नसों को। वह मामूली चीज थोड़े ही थीं।

मगर, उस जुमा के दिन उन्होंने पीलू क्या गाया, अपनी मौत को न्योता दे दिया। गाना भी कुछ ऐसा ही घातक

उसी दिन से हमारे खान्दान में, याद रहने पर भी, उस गीत को साज पर, ज़ोर से, कोई गाता नहीं। उसका शुरू है—"मैं उस पार चलूँगी आली, झाँझरि नाव नदी मतवाली।" साढे पाँच बजे शाम से आठ बजे रात तक वह इस गीत को गाती रहीं और तब तक शाहशाह के साथ हजारों नमाजी, बेहोश से होकर, सामने खडे मुल्ला के मुँह की आयतों को न सुनकर, परदादी के पीलू से पागल, बराबर उठते-बैठते और अपने खुदा के आगे कचाकच कपार पटकते रहे। जब चपाकली का गला रुका, इसराज चुप हुआ, तब उन खुदापरस्तों को होश हुआ। आलमगीर ने अपने माथे का पसीना जो पोछा, तो, उसमें सूजन मालूम हुई। वजह पूछने पर पता चला, कि नमाज़ बहुत देर तक पढी गयी—ढाई घंटे तक। जब इसके कारण की तलाश हुई, तो मालूम हुआ कि चपाकली बेगम गा रही थीं और उनका गाना ऐसा होता है, कि दुनिया का बडा से-बड़ा ध्यानी भी अपने आपे को भूल जाता है।

इसके दूसरे ही दिन चपाकली को फाँसी हुई और आलमगीर ने यह फ़रमान जारी किया, कि जो कोई भी आम जगहों के आसपास गाते-बजाते देखा-सुना जायगा, कानून उसके कुसूर का बदला उसकी गर्दन से लेगा।

शराबी

चपाकली के बाद दो-चार दादियों का दास्तान और सुनाकर कुन्दन अपनी खास दादी की बात चलाती है, जो ग़दर के पहले बादशाह बहादुरशाह के पास थी। जब वह पकड़े गये, उसी दर्मियान मे यहाँ से वहाँ भागने मे, लुटेरो ने उन्हें लूट लिया और मार भी डाला। उसी ज़माने में कुन्दन की माँ दिल्ली से भागकर रतनपुर में आ टिकी थी। वह भी गाने में सारे रतनपुर की तवायफ़ो मे फ़र्द थी। और अपने खानदान की इज्जत रखने लायक थी। उसने अपने दर्दीले गले से शहर के न-जाने कितनों के गले गाते-गाते रेत डाले और अपनी एकमात्र लड़की कुन्दन के लिये उस गली मे एक दो-मंजिला पक्का घर और कई हज़ार रुपये जमा कर छोड़े।

पचास साल की उम्रतक कुन्दन ने भी रतनपुरमे तहलका रखा। वह नाटे कद की है, इसलिए जवानी की वह ख़ास रिआयत जो नाटों को मिलती है, उसे भी खूब मिली। चालीस की उम्र तक वह बिलकुल गठी, रेखा झुर्री से रहित और ताज़ी लगती थी। मगर उसका दिल आशिक मिज़ाज क्या हुआ, वह बरबाद हो गयी। दुख के दिनों में घूम घूमकर उसने रतनपुर की पब्लिक-परियो को अपना यह कटु अनुभव बताया था, कि आशिक मिज़ाजी और वेश्या-व्यापार

मे उतना ही फ़र्क़ है, जितना ३ और ६ मे, सती बनने के विचार और हुस्न परस्ती मे या 'सारग' और 'सोहनी' में।

क्योंकि, उसने आधी सदी के अपने कमसिन दिल को—आशिक़-मिजाजी के फेर में पड एक 'जवान क़ातिल छोकरे' को सौंपकर अपना बुढापा काटने का सारा सरमाया खो दिया है। कुन्दन बीजी का मोही मन उस लडके पर ऐसा मचला कि उन्होंने अपना बचा-खुचा यौवन—।—मन, चुम्बन, धन सभी उसे धीरे-धीरे दे डाला। और वह पाजी, सारी कमाई मुट्ठी में करते ही, उस बेचारी को बुढौती में ठेंगा दिखाकर, रफ़ूचक्कर हो गया। इस घटना, या दुर्घटना का उस वेश्या की दिलदार छाती पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। उस लडके से नाता टूट जाने और सर्वस्व लुट जाने पर कुन्दन ने सैकडों बार अपने मुँह पर पश्चात्ताप के थप्पड मारे। अपना माथा कूटा, छाती पीटी, कि उसने ऐसा धोका खाया क्यों ? उसने बाजार में बैठकर, वेश्या पन को भूल, प्यार पर क्यो एतबार किया ? मगर हारी बाज़ी कब लौटती है। आशिकी के उस कडुवे कौर को सत्रह वर्ष तक उसने अपने कलेजे के खून के साथ घूँट। जीवन के पिछले दिनों में जब उसे सुख चाहिये था, शान्ति चाहिये थी, तब वह रतनपुर की उस चमाचम गली के

नुक्कड़ पर खड़ी दलाली करने और ताने सुनने को लाचार हुई। उतने भयानक दिनों तक, महीने में सोलह बार से कम नहीं, शाहजहाँ की गुलाबी बेगम की परपोती को भूखी सोना पड़ा। उसकी तस्वीर ही बदल गयी। वही कुन्दन, जो एक दिन रतनपुर की चमक थी, अब शैतान की खाला, चुड़ैल की नानी और भुतनी की भाभी बन गयी। उसकी वही नाक जिसमें पड़ी हुई सोने की हलकी नथुनी को बाहर करनेवाले रईस ने कई हजार रुपये खर्च किये थे, अब लोगों को चिपटी और भयानक दिखाई पड़ने लगी। ओह! लोगों के एक एक ताने को वह अगारे की तरह गले के नीचे उतारती।

वही कहती है, परसाल उसका सौभाग्य पुनः उसके पास लौट आया। जिस दिन वह लौटा, उस दिन वह बहुत ही दुखी थी। तीन दिनों से उसे एक रोटी भी खाने को नहीं मिली था। लोग चाहते, तो दे सकते थे, मगर, उनका मन्शा यह था, कि वह अपने मकान को गिरो रखे और पेट पाले, पर, यह उसे मजूर नहीं था। न-जाने क्यों, सब कुछ खो देने के बाद वह उस घर को खोने से हिचकती थी। उसे भूखो मर जाना मजूर था।

उस दिन वह दुखी इसलिये थी, कि भीख की कमाई

खाते-खाते उसका खान्दानी मन टूटकर चूर-चूर हो गया था। उस दिन वह एक सच्चे साथी के लिए—जिसे वह चाहकर भी न कमा सकी—दुखी थी। उस दिन वह एक मिट्टी के बच्चे और काठ की लकडी तक के अभाव से दुखी थी। उस दिन वह वेश्या कुन्दन नहीं, थकी, परीशान, प्यासी और भूखी बेचारी कुन्दन थी। उसका दुख सच-मुच अपार था।

वही बताती है—घोर अँधेरी रात थी, सावन का महीना था, बादल झूम-झूमकर बरस रहे थे। बगल के मकानों में जवानी से लदी उसकी व्यापार-बहिनें खा-पी, नाच गा और क्या-क्या कर रही थीं। और वह भूखी, एकाकी, बेचारी, बूढी, प्रकाश हीन घर के एक कोने में पड़ी भूख और निराशा और ज्वर से अपने जीवन की अकथ कहानी रो-रोकर सुना रही थी। कभी-कभी वह भगवान को भी पुका-रती थी, कि नाथ! अब या तो जो है उसे सुख से सवाँर दो, नहीं तो, बेडा गर्क कर दो!

वही बताती है, उसी समय उसके बन्द दरवाज़े पर किसी ने थपथपाया। उसने मरे मन से किसी तरह द्वार खोला और बाहर अपने सौभाग्य को खड़े और रोते पाया। वह एक जवान लडकी के रूप में वहाँ खड़ा था। उसने

गिड़गिड़ाकर कुन्दन से कहा—

"तुम मेरी माँ हो। मैं दुखिया औरत हूँ, मुझे अपने पास आश्रय दो। दुनिया में मेरा और कोई भी नहीं है। मैं डरी हूँ।"

आँखें फाड़-फाड़कर उस कोकिल-बैनी का मुँह देखने की चेष्टा करते हुए, उसे भीतर खींचते हुए, कुन्दन ने पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"जवाहर" उसने जवाब दिया और दोनों भिन्न भिन्न भावों से काँपती हुई, दरवाजा बन्द कर, घर के अन्धकार में एकाकार हो गयीं।

पन्नालाल को "उम्र भर हम रहे शराबी-से" का जीता-जागता उदाहरण यदि कहा जाय, तो कोई अनुचित न होगा। अब तो उनकी अवस्था पचास के पार है, लेकिन आज भी शराब-खोरी से उन्होंने तोबा किया हो, सो बात नहीं। अभी वह बिलकुल तन्दुरुस्त, तगड़े और प्रसन्न-



वदन हैं। वह अक्सर हज्जाम से इस बात की बाजी लगाते हैं, कि वह उनके सर से या मूछों से एक भी पका—बल्कि, अध पका ही—बाल ढूँढ दे और उनसे, एक या दो नहीं, पाँच बोतल अंग्रेजी शराब मुफ्त इनाम ले ले।

लोगो का अनुमान है, और यह सच भी है, वह दिन-रात नशे में रहते हैं। चार बजे सुबह, नियम से, सोकर उठते हैं और उठते ही न तो शिव का नाम लेते हैं, न राम का और न कृष्ण ही का। उनके नौकर, मित्र और घर-वाले इस बात के गवाह हैं, आँखें खोलते ही उनके मुँह से पहला शब्द निकलता है—"शराब!" शराब की पुकार उनके मुँह से निकली और नौकर ने सोडा, दारू और गिलास उनके सामने पेश किया। तुरन्त ढालकर वह डेढ या दो 'पेग'—या एक छटाँक समझिये—मदिरा और एक बोतल सोडा घट-घट, एक साँस में पेट मे उँडेल लेते हैं, जैसे, कोई सयमी बासी पानी से 'उप पान' करे। तब तक नौकर हुक्का ताजा कर उनके सामने लाता है और वह टहल-टहल कर धुँआ उडाते हुए शौचादि की तैयारी करते हैं।

समाज ने, मुहल्ले और शहर के भलेमानसों ने और धर्म के ठेकेदारों ने उन्हें हजार बार और हजार तरह से समझाया, कि वह यदि शराब पीना छोड़ दें, तो आदमी से हीरा

हो जायँ, मगर, ऐसे उपदेशकों की ओर नशे के झोंक में मुँह बिगाडकर घृणा से देखने के अलावा उनके पास दूसरा कोई उत्तर नहीं। और इतने पर भी समाज उनसे घृणा नहीं करता, प्रकट रूप से घृणा प्रकट करने की हिम्मत नहीं कर सकता, क्योंकि, उनके पास सामाजिक दृष्टि से काफ़ी सम्पत्ति है। सम्पत्तिवान तो बाबू पन्नालाल के पूर्वज भी थे, क्योंकि, सात-आठ हज़ार वार्षिक आय की उनकी ज़मीन्दारी है, मगर, उन्होंने स्वयं भी दो लाख से ऊपर रुपये दारू पीते-पीते बनाये हैं। वह रतनपुर के प्रसिद्ध मुख्तार हैं। ऐसे मुख्तार, जिनकी प्रतिभा की प्रसिद्धि आस-पास के कोडियों गावों के जमीन्दारों और काश्तकारों में है। उनके बारे में लोगों की यह धारणा है, कि उनके हाथ का मुकद्दमा कभी बिगडता ही नहीं।

वह अदालत में भी शराब पीकर जाते हैं, साथ ही उनका नौकर हमेशा वहाँ भी बोतल और गिलास लिये तैयार रहता है। ज़रा-सा मौका मिलते ही वह एक दो घूँट दारू पी लेते हैं और तब अदालत के सामने डटकर बहस करते हैं। लोगों की धारणा है, कि जब वह बहस करने लगते हैं, तब "साक्षात् श्री शारदा भवानी" उनकी जबान पर आ विराजती हैं। लोगों की इसी धारणा का यह फल

हैं। पेशी के पूर्व ही—बल्कि गरीब मुवक्किलों से तो दो पेशियों का—नजराना, पेशगी लेने के बाद ही वह मुख्तार-नामा दाखिल होने देते हैं। उनकी इस अर्थ-पिशाचता से सभी परिचित हैं, मगर, उनके दिमाग की खूबी से लाचार भी सब हैं, क्योंकि, सौ में से मुश्किल से कभी एक मुकदमा उनके हाथ से खराब होता है।

उनके परिवार में वह, उनकी स्त्री और एक लड़का मात्र है। लड़के का नाम मानिकलाल है। वही मानिकलाल जो रतनपुर की कन्या और रामपुर की वधू हीरा का बाल-सखा है।

हीरा का पति एक दिन दस-पाँच इष्ट मित्रों, सबन्धियो और बड़ो के साथ, एक नाई और आठ कहारों के साथ, पालकी में बैठकर, अपनी ससुराल रतनपुर में आया और हीरा को उसकी ससुराल, रामपुर, विदा करा ले गया। वह बड़े ठाट बाट से आया था। उसके पाँव रँगे थे, उसके परिधान नये, रग बिरगे और चमकीले थे। यद्यपि उसकी वह उम्र बीत चुकी थी

जिस उम्र के—निमुछिये गुण्डे-से—दूल्हे हमारे समाज में बड़े उत्साह से देखे जाते हैं, यद्यपि हीरा के साथ उसकी दूसरी शादी थी, यद्यपि अब वह काफी बड़ा और भरपूर मुच्छाड़िया जवान था, फिर भी, उसकी रँगाई चुँगाई किसी भी कमसिन दूल्हे से कम नहीं हुई थी। उसकी मूछों की बगल में, कानों को अपने सुनहले चक्कर में लपेटे हुए, चमकीले और बड़े बड़े मोमी-मोतियों से सजे बाले खूब ही मज़ा दे रहे थे। उसके हाथों में सोने के कड़े, गले में कण्ठा, तिलरी और तावीज़, कमर में चाँदी की मोटी करधनी और अंगुलियों में मोटी, पतली, जड़ाऊ, सादी मुंदरियाँ रतनपुर के वर दर्शकों को भले प्रकार से लुभा रही थीं। कितनी वृद्धाओं ने उसको देखकर, भगवान से हाथ जोड़कर, अपनी-अपनी नतनियों, पोतियों और पुत्रियों के लिए वैसे ही चमचम वर की मौन प्रार्थनाएँ कीं।

मगर, रतनपुर की अविवाहित लड़कियों और नवागत वधुओं ने हीरा के वर को उतना पसन्द नहीं किया, क्योंकि, विवाह के समय ही उसकी मूछों से वे निराश हो गयी थीं। उनका कहना था कि—"यह तो दूल्हा नहीं पूरा 'मरद' मालूम पड़ता है। ना 'दुआहा वर' सुन्दर नहीं होता।"

ख़ैर, गौने की और रस्में तो किसी तरह समाप्त हो गयीं, हीरा का पिता गरीब था, उससे न तो विवाह के वक्त रामपुर-वालों को कुछ अधिक मिला था और न गौने ही में कोई विशेष आशा थी, मगर वर की विदाई मे केवल पाँच रुपये मिलते देख उसका पिता आग-बबूला हो गया। उसने हीरा के बापकी ओर देखकर काट खाने का भाव बनाया, दाँत किटकिटाये और माथे पर शिकन डालकर अफ़सोस से हाथ मलते हुए कहा—"आह! किस चमार के घर मैंने अपने लडके की शादी की। इस पचरुपुल्ली से तो चार चावल ही अच्छे थे।"

समधी-द्वारा इस प्रकार अपमानित होने पर हीरा का पिता भी उत्तेजित हो उठा। उसने कहा—"चमार थे, तभी तो दुआहे लड़के से अपनी लक्ष्मी को व्याह दिया है। धन्य हैं आप, जो ऐसे वाजपेयी होकर भी हम चमारों का उद्धार करते फिरते हैं। अब इसे लिवा जाइये अपने स्वर्ग में। अब गाली देने से क्या लाभ। कृपा कीजिये हम गरीबों पर।"

विदाई के समय खासी चिल्ल-पों मची। मुहल्ले-भर की लडकियाँ और बूढियाँ हीरा को गले से लगाकर रोने लगीं। उनमें से कुछ तो बहुत बढिया रोनेवाली थीं। वे घटों तक करुणा का रूखा राग गाती रहीं—आँसू का एक

कतरा भी आँखों के बाहर निकाले बिना। वे रोने के स्वर में शब्दों को खींच खींचकर घिघियाती रहीं .

आह मेरी रानी! तेरा बाप कैसा निर्दय है, जो उसने तुझे बे-जानों के हाथ में सौंप दिया है। अरी मेरी चमेली! अब तू दूसरों के आँगन मे खिलेगी और महँकेगी और हमारा आँगन तेरे अभाव से सूना रहेगा, उदास रहेगा। हाय मेरी सीया! मेरा हीया कैसा काठ सा है, जो मैं तुझे छोड रही हूँ। तू चिट्ठी लिखना, ए रानी! हमें भूल न जाना, ए मेरी कलेजी .

हीरा को ऐसी लच्छेदार रोदन प्रणाली नहीं मालूम थी। वह भेटनेवालियों के गले से लगकर उन्हे अपनी छाती की धड़कन से दहलाने, आँसुओं से—सचे और सुन्दर आँसुओं से—नहलाने लगी, पर, केवल ऊँ ऊँ ई ई करती हुई। पालकी तक जाते-जाते उसके आँसू सूख गये, आवाज़ पड़ गयी और मारे प्रेम और स्वजन वियोग के वह बेसुध-सी हो गयी—दूल्हा के सामने, पालकी के एक कोने में, लुढक गयी। किन्तु, मुहल्ले की रोनेवालियों को इससे सन्तोष नही हुआ, क्योंकि, वह लच्छेदारी से नहीं घिघिया सकी थी।

कहार वर और वधू से भरी पालकी उठाकर, अपनी

'बानी' बोलते हुए, अन्य लोगो से कुछ पहले ही, आगे बढे। पालकी की चर्रर-चख, मच-मच आवाज़ और विचित्र कम्पन हीरा के वियोग और रोदन से थके अल्हड़ तन और मन को शयन और स्वप्न का सवाद देने लगे। वह अपने आपे से ऐसी गाफिल थी, कि उसे यह खबर भी नहीं रही, कि उसी के सामने उसका कोई शुद्ध सगा बैठा उसे घुरेर रहा है। रतनपुर से एक मील आगे पहुँचते पहुँचते वह सपने देखने लगी।

इधर पालकी उठते ही हीरा के पति के मन मे यह बात जगी कि बस्ती से बाहर होते ही उसकी स्त्री अपना मुँह उसे दिखावे, हँसे, कुछ कहे, कुछ सुने, कुछ

वह बडी उत्सुकता से इस इन्तज़ार मे रहा कि हीरा सगबगाये और जागे। उसने बार बार उसके मुँह की ओर देखा, मगर वह घूँघट से ढका था और घूँघट का पट उसकी ला-पर्वाह तेज साँसो से काँप रहा था। उसने एक बार खाँसा, मगर, वह नहीं जागी। फिर उसके लाल-लाल और गहनों से सजे पाँवों पर अपना हाथ रखा, वह ज्यों की त्यों रही। आखिर उसने सावधानी से उसके मुख पर का घूँघट हटा दिया। घूँघट हटाने के समय उसकी कलाई सतर्क असावधानी से हीरा की छाती पर पड़ी, जिसमें उसे स्पन्दन का

अनुभव हुआ। जिससे उसका मुँह कान तक लाल हो गया। माथे पर पसीना रेंगने लगा।

उसने देखा—उसकी स्त्री साँवली थी, सुडौल थी, खूब आकर्षक थी। उसकी आँखें यद्यपि उस समय बन्द थीं, फिर भी वे बड़ी-बड़ी और लम्बी लम्बी बरौनियों से सजी थीं। रोने से उसके चेहरे पर जो थकाहट छप गयी थी, उसने उसकी शोभा और भी निर्मल कर रक्खी थी। हीरा के पति की धड़कती छाती में ऐसी इच्छा नाचने लगी, कि वह उसे तुरन्त ही भुजाओं में कसकर चूम ले।

चूम ले! उफ, इस विचार ही से वह इस प्रकार उत्तेजित होकर हिला, कि कहारों के कन्धों पर हलका-सा धक्का लगा। उन्होंने अपनी बोली में कहा—"राम दोहाई ऊँचा रे! सँभले भाई, खाला रे!" उनकी बानी ने हीरा-पति को सावधान कर दिया। उसी समय उसके मन में एक विचार और उठा। वह यह कि बिना इष्ट और कुल देवो की पूजा और लोकाचार हुए वधू से प्रेमालाप करने से देवता असन्तुष्ट होते हैं। उसने सुना था, कि राजा दशरथ ने इसी प्रकार रास्ते में, अपनी दूसरी रानी सुमित्रा से प्रेमालाप किया था, जिसके कारण उनके गुरु, या न जाने किसने उन्हें सुमित्रा से सन्तति न पाने का शाप दिया था। अस्तु, उसने

निश्चय किया, इस समय जरूर कोई 'वैसा काम' न करना चाहिये।

इसी समय हीरा ने असावधान अँगड़ाई ली। घूँघट और भी खुल गया, छाती पर का वस्त्र इधर-उधर बिखर गया और उसके भरे मुख की तरह उसकी उभरी छाती भी परदे के बाहर हो गयी। मगर, मुख बिलकुल नग्न था और छाती पर जाकिट कसी हुई थी।

वह स्वप्न देख रही थी। उसे ऐसा मालूम पड़ा, गोया अनेक काले-काले डाकू उसको उठाकर जंगल की ओर लिये जा रहे हैं। वह रो रही है, चिल्ला रही है, मगर, वे छोड़ते नहीं उसको। उन्होंने निविड वन में एक शिला पर उसे सुलाया और तब छोड़ कर भाग गये। वह चौंक कर उठी और चारों ओर निहारने लगी। उसने देखा—कोई बाघ उसकी ओर झपटा चला आ रहा है। वह डरी, चंचल हुई, स्थिर हुई, धड़कने लगी। वह कहाँ भागे? बाघ उसके पास आकर उसकी छाती पर पंजे रख कर अपने विकराल जबड़े, जीभ और दाँत दिखाने लगा। उसने उसके मुँह पर अपना भयानक मुख रख दिया। वह काँप कर, सिर से पैर तक कण्टकित होकर, जाग उठी।

उसने देखा—घनी मूछोंवाला कोई लम्बा और अना-

कर्पक मुख उसकी ओर—उसके ओठों की ओर—तृष्णा से भरा, बढ़ा आ रहा है।

वह मुख उसी का था, जिसने उसके माथे में सिन्दूर दिया था और जो उसी पालकी में उसके सामने, उसके ऊपर झुका, स्थिर और मादक दृष्टि से उसे घुरेर रहा था। यदि वह क्षण भर और न जागती, तो उसका पति उसे चूम लेता। अपनी भुजाओं में बाँध लेता। पर पति के इस प्रेम-प्रदर्शन से उसके मन में उस व्यक्ति के विरुद्ध न जाने कैसी अपरिचित घृणा जाग उठी। उसने अपने दोनों हाथों से, झटके से, उस लम्बे और अनाकर्षक मुख को पीछे धकेल दिया। झम्म से उठ बैठी, घूँघट और छाती के वस्त्र सँभालने लगी।

फिर कहारों को धक्का-सा लगा। उन्होंने आवाज़ दी—"हिलमत भैया! ऊँचा रे—खाला रे!"

मानिकलाल को पहले यह बात नहीं मालूम थी कि हीरा के लिए उसके दिल में कितनी जगह है। मगर, जब से वह



लौटकर, किताबें यथास्थान रख, अपने कमरे में मुँह लटका-
कर ध्यानावस्थित बैठ जाता।

शाम को वह घर पर हाजिर रहता, किसी के डर से
नहीं, बल्कि हीरा को 'कहीं देख पाने' के लालच से,
क्योंकि प्राय उस समय वह मानिक की माँ से मिलने
या गली में निकलकर—न-जाने क्यों—इधर-उधर देखने
के लिए अपने घर से बाहर निकलती। रोज तो नहीं, मगर
सप्ताह में चार दिन अवश्य वह हीरा को कहीं-न कहीं
देखता—सजल आँखों से। वैसे, जैसे मछली मानस की
ओर निहारे, या मयूर मेघों की ओर।

यदि हीरा उसके घर आती, तो वह भी अपनी माँ के
पास चला जाता, जहाँ वह बैठी रहती। मानिक को देखते
ही हीरा गुलाबी हो जाती और घूँघट काढ लेती। बहुत
नहीं, मगर, थोड़ा थोड़ा।

मानिक कहता—माँ, देखती है। यह वही तो हीरा है,
जो चार बरस पहले सब लड़कों से अधिक मुझको मारती
थी। मगर, अब यह कैसी बनती है। क्या लजाती है!
मन करता है, मैं इसे मारूँ एक दिन।

उसकी माँ हँसने लगती—पागल! लड़कियों को ऐसा
ही करना पड़ता है। वह दूसरों की होती हैं, ब्याहने के

याद ही हो जाती हैं। यह भी अब रामपुर की हो गयी है। अब इसका ससार यहाँ से उठके वहाँ चला गया है। प्रेम, क्रोध, कृपा, विरोध अब यह वहीं कर सकती है। अब न यह तुझे मार सकती है और न तू इसे।

मगर, हीरा, ऐसी बातों पर अपने सुफेद, सुडौल, सुन्दर, सघन दाँतो को जरा जरा-सा खिलाकर, घूँघट ही में पुरानी हीरा का नाट्य करती हुई कहती—मारो न। मैं बहुत दिनों तक तुम्हें चप चुकी, अब तुम उसकी कसर चाहो तो, खुशी से निकाल लो।

जिस दिन मानिक हीरा से इतनी बातें भी कर पाता, उस दिन वह ऐसा सोचता, गोया उसके भाग्य—हजार मन हुस होन पर भी—धन्य, धन्य हैं। मगर, पिछलेकाँटे वह मानिक के घर बहुत कम आने लगी। अक्सर मानिक की माँ ही उसके घर जाती। ऐसी परिस्थिति में, हीरा की तस्वीर, प्राय साँझ को, उसके द्वार ही पर दिखाई देती। पहले वह आँखों से अपरिचितों को टटोलती सी, घर के बाहर आती। दरवाजे के बैठके में मानिक उसे जोहा करता। देखते ही प्रसन्न हो जाता और छिपे छिपे देखने और प्रसन्न होने लगता। फिर, वह कमरे के बाहर आता और हीरा अपने दरवाजे की आड़ में हो जाती,

उसकी बड़ी-बड़ी काली आँखें बाहर की ओर ताकती ही रहतीं।

गौने के चार दिन पहले वह मानिक की माँ से मिलने आयी थी। मानिक तो इन्तज़ार ही में था। ज्यों ही वह घर में घुसी, त्यों-ही वह भी उसके पीछे हो लिया। हीरा दालान में पहुँचकर रुक गयी, जानबूझ कर। उसे रुकते देख उससे गज़ों दूर पर मानिक भी खड़ा हो गया। दोनो की आँखें, एक भाव से, चार हुईं।

"जाओ!" हीरा ने कहा—"मैं तुम्हारे पीछे आऊँगी।"

"तू जाती क्यो नहीं," मानिक बोला—"मेरे लिए रुकनेवाली तू कौन।"

हीरा ने उदासी से कहा—"हूँ!"

"जा न!" मानिक ने दोहराया।

"मुझे तो जाना ही है। आज नहीं कल सही, कल नहीं परसों सही। मैं क्या यहाँ टिकने आयी हूँ। जा—जा क्या कहते हो। ज़रा निकट आओ, धीरे से एक बात पूछूँगी।"

"ना, ना," मानिक ने सात्त्विकता से अपने कान छूते हुए कहा—"निकट नहीं आ सकता। तू मुझे छू लेगी।"

"मैं क्या ऐसी अछूत हो गयी हूँ?"

"हाँ हीरा ! तू अब हम-जैसों के लिए अछूत ही हो गयी है। माँ मना करती हैं।"

हीरा ने एक लम्बी साँस ली। निराशा से मानिक की ओर देखकर वह आगे बढ़ी। मानिक की छाती धड़कने लगी। शायद हीरा की भी। मानिक की छाती के उस स्पन्दन का नाम 'क्रिया' हो सकता है और हीरा की धड़कन का नाम—शायद—'प्रतिक्रिया'।

"हीरा !" इस बार मानिक ने उसे बाधा दी।

'हाँ," वह रुकी—"अब जाने क्यों नहीं देते ?"

"एक बात मुझे भी पूछनी है।"

"पूछो !"

"ज़रा निकट आ ! धीरे से पूछूँगा।"

"तुम्हीं आओ !"

मानिक उसके निकट हो गया।

"मैं पूछता हूँ," उसने रूखा व्यंग्य सा किया—"ब्याह कैसा होता है ?"

"जल्द ही जान लोगे।" उसने कहा—"माँ कहती थीं, तुम्हारे ब्याह का मोल भाव हो रहा है।"

'हट ! मोल भाव कहती है। क्या तेरे ब्याह का मोल-भाव हुआ था ?"

"मेरे का नहीं हो सका। मैं गरीब की बेटी जो हूँ। तुम जानते नहीं? तुम्हारा तो सौदा ही होगा।" उसने तीखी मुस्कराहट में लपेटकर कहा—"तुम भाग्यवान हो मानिक! तुम्हें किसी 'बड़े' की 'बड़ी' का 'बड़ा दूल्हा' बनना है।"

"मैं यह सब नहीं पूछता।" मानिक ने कहा—"मैं पूछता हूँ, ब्याह कैसा होता है?"

"रामपुर से लिखूँगी।"

"दुर! तुझे लिखना कहाँ आता है?"

"ओहो!" वह पाजीपन से हँसी—"मैंने समझा मैं ही स्कूल जाती और दर्जा दस में पढती हूँ। मगर यह तो तुम्हारी बात है। खैर, तुम्हीं मुझे रामपुर पत्र लिखकर बताना, कि, ब्याह कैसा होता है। शीघ्र ही तुम जानोगे इस बात को। हाँ, तुम्हारी जान की क़सम!"

"हट, डायन! अपनी जान की कसम क्यों नहीं खाती?"

"मेरी जान कहाँ, मानिक! मैं तो गरीब हूँ।"

मानिक ने आँख बदलकर कहा—"ऐसे बोलेगी, तो पट से मार दूँगा। यह नहीं सोचूँगा कि, तू रामपुर की है या रतनपुर की।"

"मारो।" वह, बिजली-सी चमककर चार गज दूर हो रही।

जवाहर का हाथ पकड़कर उस रिम-झिम सावन और घोर अंधकार में कुन्दन अपने घर के निचले खंड की उसी कोठरी की ओर बढ़ी तो, जिसमें क्षण-भर पूर्व सोई हुई वह अपने मन्द-भाग्य को कलप रही थी, मगर, थोड़ी ही दूर चलने पर उसे ज्ञात हुआ, कि आनेवाली अपरिचिता सिर से पैर तक भींगी हुई है।

उसको पहनने के लिए इस समय वह क्या दे? यह सोचने पर उसको याद आयी कि, ऊपर के खण्ड में, काठ की टूटी सन्दूक में, एक फटी और पुरानी महीन सारी है। यद्यपि उससे 'औरत की लाज' नहीं ढकी जा सकती— यह कुन्दन ने समझा, मगर, यह भी समझा कि उस अन्धकार, एकान्त और बरसाती रात में वहाँ था ही कौन जिसके आगे लाज की जरूरत हो।

"तुम्हारे कपड़े भींगे हैं," उसने जवाहर को बीच कोठरी में रोककर कहा—'ठहरो, जरा बिस्तर समेट लूँ, तो दो तल्ले में चला जाय। वहाँ तुम्हें दूसरा कपड़ा दूँगी, तब न तुम इसे उतार कर सुखा सकोगी।"

जवाहर जहाँ-की-तहाँ चुपचाप खड़ी सर्दी तथा चिन्ताओं से काँपती रही। कभी कभी दहलते हुए उसके दाँतों की हल्की टकराहट् बूढी कुन्दन के कानो तक पहुँच जाती थी, जिसे सुन कर उसके मन में बडी सहानुभूति जाग उठी, उस अनजान लड़की के लिए, क्योंकि उस समय वह स्वय दुखी थी। और एक दुखी दूसरे दुखी को खूब समझता है।

तुरन्त टाट और फटा तकिया समेटकर वह सीढियों की ओर बढी। जवाहर उसके पीछे पीछे थी। उसके कपडे के कोनो से पानी इस तरह बरस रहा था, जैसे मकान की ओरी चले। कोठरी, रास्ता, सीढियाँ जहाँ-जहाँ उसके पैर पडे वहाँ वहाँ पानी-ही-पानी हो गया। ऊपर पहुँचते ही 'बिस्तर' नामधारी टाट को एक ओर फेंक कर कुन्दन ने पहले तीनों खिरकियाँ खोल दीं, जिससे वहाँ का निविड़ अन्धकार जरा सा धुँधला हो गया। खिरकी खोलते हुए उसकी नजर सड़क पर गयी, पर, वहाँ कुछ भी स्पष्ट न दिखाई पड़ा। हाँ, यह बोध अवश्य हुआ कि खूब वृष्टि हो रही है, नदी की तरह सड़क बह रही है। सामने के तिन-तल्ले मकान की खिरकियाँ बन्द थीं, उनके छिद्रो से प्रकाश की चिनगारियाँ बाहर की ओर झाँक रही थीं। इससे,

किसी अन्य आहट के अभाव में भी मुहल्ले से परिचित कुन्दन ने अन्दाज लगा लिया, कि उसकी पड़ोसिन अभी सोई नहीं है।

"तुम अपनी धोती उतारकर, दरवाजे पर खड़ी होकर, सीढ़ियों पर निचोड़ डालो। तब तक मैं सन्दूक से दूसरी धोती निकाल लाती हूँ। सकोच न करो बेटी! इस मकान में मुझे छोड़ और कोई भी नहीं है।"

चुपचाप जवाहर उस अन्धकार में नगी हो गयी और कुन्दन के कथनानुसार उसने अपनी धोती निचोड़ ली।

"लो!" फटी धोती लाकर कुन्दन ने कहा—इसे तब तक लपेट लो। और, गीली धोती को —यहाँ—इस अलगनी पर पसार दो। तुम्हे दिखाई पड़ता है कि नही? इधर आओ।"

"जरा देह पोछ लूँ!" धीरे से जवाहर ने कहा।

"हाँ, हाँ बेटी! जरूर पोंछ लो।" उसकी ओर बढ़ती हुई कुन्दन बोली—"मालूम पड़ता है, तुम देर से इस बरसात में भींग रही थीं। ओह मेरे भगवान! तेरे तो दाँत बज रहे हैं।"

आगे बढ़कर उसने जवाहर के तन को अन्धकार मे टटोला। उसका हाथ उसकी कमर पर पड़ा, जिस पर उसके शाके अभी तक टप् टप् टपक रहे थे।



'बालों को मज़े में पोछ लो—खूब मज़े में—नहीं तो तबीयत खराब हो जायेगी। आह री गरीबी! आज मेरे पास इतना कपड़ा भी नहीं कि तुम्हें गरम कर सकूँ।"

वह फिर जवाहर को छोड सन्दूक की ओर बढ़ी, उसमें पुन कुछ टटोलने लगी। आवश्यकता ने उसे स्मरण दिलाया, कि उसके निचले भाग में एक फटा कम्बल भी रखा है, जिसे दीमकों ने और कीडों ने बारी-बारी से काट-काट डाला है। मगर, इतने पर भी इस वक्त वह लाख टके के लिहाफ का काम दे सकता है। उसने निकाल बाहर किया उसे। टाट को जमीन पर फैलाकर तकिये को फटककर एक ओर रखा, और बोली—

"पहन चुकी? फैला दी गीली धोती? इधर आओ। यह कम्बल तो उस धोती से भी ज्यादा तबाह है, पर, तुम्हें कुछ-न-कुछ आराम ही देगा।"

जवाहर उसके पास आकर टाट पर बैठ गयी। बूढ़ी कुन्दन कम्बल फैलाकर टटोलती हुई उसकी देह को ढकने लगी। उसी टटोल में उसने जवाहर के अगों का स्पर्श किया, गालों की गोलाई और आँखों की बडाई का अनुभव किया। उसके गले और छाती तक हाथ पहुँचते-पहुँचते, न जाने क्या सोच-समझकर, वह कुछ ऐसी प्रसन्न हुई कि

उसका दिल धड़कने लगा। जैसे कोई नवयुवक किसी नव-यौवना को स्पर्श कर हर्षित और पुलकित हो, वैसी ही दशा जवाहर को जवान जानकर बूढी कुन्दन के मन की हुई। पकड़कर बरबस उसको उसने टाट पर लिटा दिया, तकिया उसके सर के नीचे रख दिया और गर्दन के ऊपर का हिस्सा खुला छोड़ बाकी देह को उस फटे कम्बल से ढक दिया।

'सर्दी ज्यादा मालूम पड़ती है ?"

'नहीं - " धीरे से जवाहर ने साँस ली।

"अब भी जड़ाती हो, तो, बोलो ? मैं भी तुम्हारे ऊपर लेट जाऊँ।"

जवाहर ने जोर से कहा—"नहीं। बहुत मजे में हूँ।"

"कब से भींग रही थीं ?"

'दो तीन घंटे से।"

"दो तीन घंटे से, या भगवान !"

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। कुन्दन मन-ही-मन सोचती रही कि किस तरह उस लड़की का परिचय पूछना आरम्भ करे। यह कौन हो सकती है ? बोल-चाल से तो भले घर की मालूम पड़ती है। क्या वह किसी की विधवा बेटी या वधू है ? या किसी कमजोर आदमी की चंचल घरवाली है ? वह मजे में जानती थी इस बात को कि उस मुहल्ले में



समाज से बहकी हुई लड़कियाँ अक्सर आती रहती हैं। कोई महीना खाली नहीं जाने पाता। बाहरी आमदनी ऐसी चोखी न हो, तो उस चम-चम गली में चन्द दिनों में ही गधे लोटने और स्यार रोने लगें। यह भी वह जानती थी। जवाहर के अनायास आगमन को, अपने पक्ष में, उसने आमदनी ही समझा—फिर आगे चलकर चाहे किसी भी मिजाज की वह क्यों न साबित हो।

ज़रा गरमी पाकर जवाहर ताज़ी हुई और कम्बल के भीतर सगबगाई। कुन्दन ने उसकी छाती पर हाथ रखते हुए पूछा—

"क्या है बेटी ?"

"मुझे डर मालूम पड़ता है।"

"किसका डर ? आराम से सोओ, इस जगह किसी का डर नहीं। यह मेरा घर है।"

"उसने मुझे ढूँढने के लिए सिपाहियों को चारों ओर भेजा होगा।"

"किसने ?"

"उसीने—उसी स्टेशन-मास्टर ने।"

"कौन स्टेशन-मास्टर ? अरे—तुम स्टेशन से इस रात और बरसात में भींगती भागती आयी हो ? तुम कौन हो ? तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"मैं मुन्शीगञ्ज की रहनेवाली हूँ।"

"कौन मुन्शीगञ्ज ? वही जो एलाहाबाद से कई स्टेशन आगे पड़ता है ?"

"हाँ, मेरा घर वहीं है। वहीं से, अपनी इच्छा से, घर और मुन्शीगञ्ज से ऊबकर, मैं परसों से भगी हुई हूँ।"

"अच्छा—तुम अपने घर से भाग निकली हो। खूब तकलीफ देते थे घरवाले न ! अरी बेटी, यह दुनिया ही ऐसी है। अपने दिन जब पतले हो जाते हैं, तब अपने सगे सजन भी साँसतें करने लगते हैं। तुम रतनपुर में कब आयीं ?"

"कल ९ बजे रात। इसी स्टेशन पर मुझे टिकट जाँचनेवाले ने उतार दिया। मेरे पास टिकट नहीं था।"

"तुम जा कहाँ रही थीं ?"

"मालूम नहीं। दोपहर के बाद, घर से भागकर, मुन्शीगञ्ज स्टेशन के उस पार, एक खडहर में मैं छिपी रही। जब शाम हुई और एक सवारी गाड़ी आयी तब मैं, दूसरी ओर से आकर, धीरे से उसमें बैठ रही। सोचा था—कहीं भाग चलूँ, फिर जो होगा देखा जायगा।"

"फिर ?"

"यहाँ के स्टेशन से पहले टिकट जाँचनेवाला आया। माँगने पर जब उसको मैंने टिकट नहीं दिखाया, तब उसने

पूछ-ताँच शुरू की। और फिर यहाँ के स्टेशन पर उतारकर स्टेशन-मास्टर के हवाले कर दिया। स्टेशन-मास्टर ने सर से पैर तक मुझे निहारकर धमकी के स्वर में पूछा—तेरा टिकेट कहाँ है? मैंने डरते-डरते जवाब दिया—बाबूजी, मेरे टिकट नहीं है। पैसे भी नहीं हैं। यह मेरा कड़ा आप ले लें और मुझे छोड़ दें। इस पर उसने पुन तीव्र दृष्टि से मुझे देखा—नौकरी करेगी? मैंने कहा—बाबूजी कडे ले लो और मुझे जाने दो। उसने धमकाया—नहीं। तू पाजी औरत मालूम पडती है। तुझे पुलीस के हवाले करना होगा।"

"बडा पाजी था दईमारा।" कुन्दन ने बनावटी रोष से कहा।

"मैं डर गयी," जवाहर बोली—"काँपने लगी। मैंने कहा—आप मुझे पुलिस में न दें। मैं नौकरी करूँगी। मैं मन-ही-मन समझ गयी कि उसकी नौकरी कैसी होगी, मगर पुलिस के हाथ में पड़ने से, उस वक्त मुझे वह नौकरी कहीं अच्छी मालूम पडी।"

"तो कल रात और आज दिनभर तुम उसी के साथ थीं?"

"हाँ—मेरे राजी हो जाने पर एक चपरासी के साथ उसने मुझे अपने डेरे पर भेज दिया जो स्टेशन के पीछे है

और ईंटों का बना हुआ छोटा बङ्गला है। रास्ते ही में माने-माने चपरासी ने मुझे बताया कि स्टेशन-मास्टर की नौकरी आसान नहीं। उसने बताया कि इस नौकरी के सिलसिले में मुझे बहुतों को खुश करना होगा। आजकल स्टेशन मास्टर की घरवाली मायके मे हैं, इसलिये मैं बङ्गले मे टिकाई जा रही हूँ। उनके आते ही मुझे किसी रेलवे खलासी या सिपाही के साथ रहना और स्टेशन मास्टर की नौकरी करना होगा। सचमुच, दूसरे दिन कई आदमी मुझे देखने के लिए आये। वे ऐसी नज़र से मुझे गुरेरते गोया पावें तो खा ही जायँगे। मैं डर गयी उनकी आँखों और चितवनों के अर्थ से। इसी से, ज़रा सा मौक़ा पाते ही, आजही भाग खड़ी हुई। लेकिन उसने मुझे चेताया था कि मैं भागूँगी तो वह पुलीस से पकड़वा मँगावेगा। चोरी के इल्ज़ाम में जेल भेज देगा।"

"तुम्हारी बातें! तुम्हारा बाल तक तो वह बाँका नहीं कर सकता बेटी। आज से तुम मेरी बेटी से बढकर हुई। क्या मजाल जो कलट्टर तक, मेरे घर पर तुम्हारे दामन में हाथ लगा सके। मैं, हज़ार गरीब होने पर भी, गुलाबी बेगम की परपोती हूँ। वही गुलाबी बेगम जिनपर आज से तीन सौ बरस पहले बादशाह शाहेजहाँ फिदा थे। स्टेशन-मास्टर!—मुझौंसा!!"

वह प्रेम और आश्वासन से जवाहर के गाल पर हलकी-हलकी थपकियाँ देने लगी।

मानिकलाल जान बूझ कर उस दिन स्कूल गया, जिस दिन हीरा विदा होनेवाली थी। और सो भी समय से बहुत पहले ही। साढे नौ बजे स्कूल लगता था और वह आठ बजे से पूर्व ही वहाँ पहुँच गया। अभी स्कूल का चपरासी भी नहीं आया था। दरवाजे बन्द थे। हाल में भगी झाड़ू दे रहा था। उस समय मानिक को देखकर, अधिक परिचय न होने पर भी, वह चकित हुआ। "अभी से बाबू! तीन घंटे पहले!" उसने झाड़ू लगाना बन्द कर मानिक की ओर देखा। "आज कुछ जरूरी काम यहीं करना है जी," मानिक ने भगी को उत्तर दिया—"हाल बुहार लेने के बाद 'टेन्थ ए क्लास' में पहले झाड़ू दे देना, फिर दूसरे क्लासों को बुहारना। हाँ।" भगी ने सकेत से मानिक की इच्छा पूर्ण करने का वादा किया और फिर अपने काम में, पीठ और सर झुकाकर, जुट पड़ा।

अपने स्थान पर पुस्तकें रख देने के बाद वह बाहर आकर टहलने और सोचने लगा। वह सोचने लगा कि इतनी जल्द घर से यहाँ भाग आने की क्या जरूरत थी? वह परायी चीज यदि पराये के पास जा रही है, तो उसके मन में इस बात को लेकर आन्दोलन क्यों हो रहा है? माना, वह उसको प्यार करता है। हीरा भी उसको चाहती है। ब्याह हो जाने पर भी उनमें एक दूसरे के लिए हृदय है और स्पन्दन है और पुलक है—यह भी उसने मन ही-मन मान लिया। पर, वह घर से भाग क्यों आया?

वह जाती है—जाय। वह रोती है—रोवे। हमेशा के लिए उसकी प्रेम-परिधि के बाहर हो रही है—होवे, होवे, जो होना ही है, जरूर होवे। उसे विधाता के इस विषय या विकट अथवा विप्लवमय विधान को उतनी ही हिम्मत से देखना चाहिये था, जितनी हिम्मत से वह हीरा की काली काली, बड़ी बड़ी, जीवनमयी आँखों को देखता था। वह भाग क्यों आया?

पहले उसने सोचा था कि हीरा जब तक उसकी आँखों के सामने है, तभी तक यह मन का मेला और आँखों का तमाशा है। एक बार उसने रतनपुर छोड़ा और बस सब समाप्त हुआ। मगर, आज इस पलायन से उसे कुछ और

ही समझ पड़ा। क्या समझ पड़ा?—उसने ठीक-ठीक समझा नहीं। वह केवल किताबें उठाकर, ढाई घंटे पहले, घर से स्कूल भाग आया। सोचा, उसकी गैरहाजिरी में प्रेम का, हृदय का, मन का, सारा तूफ़ान हमेशा के लिए उसके मुहल्ले, घर और रतनपुर से दूर निकल जायगा और वह सन्ध्या को, गोधूली की गंभीर शान्ति में, नये 'मानिकलाल' के वेश में, अपने घर लौटेगा। परन्तु उसकी वह धारणा शायद वैसी ही थी जैसी उस रेगिस्तानी जानवर की जो तूफ़ान को सर पर देख कर, आँखें बन्द कर, गर्दन झुकाकर बालू के समुद्र में भ्रान्त-शान्त खड़ा हो जाता है। यह सोचता हुआ कि, न देखने ही से तूफ़ान व्यर्थ हो जायगा।

मगर, उस भोले पशु पर अन्धड़ अपना आतङ्क पसारता ही है—उसके अस्तित्व को अपने हाहाकार में छिपा ही लेता है। वैसे ही, घर से भागने पर भी, मानिकलाल बहुत दूर न भाग सका, हीरा से, उसकी उन आँखों से और यौवन की उन मधुर, मोहिनी, 'ममतामयी स्मृतियों से। शरीर उसका स्कूल-घर के बाहर जरूर टहल रहा था, पर वह, उसके भीतर का मानिकलाल ज्यों-का त्यों अपने बैठके ही में बैठा रहा—आँखें हीरा के द्वार पर गड़ाये।

स्कूल में रहने पर भी वह मजे में हीरा को देख रहा था। उसके पाँव रँगे, बाल गुँथे, माँग में सिन्दूर, हाथ में सोने के कंकण, सिन्दूरी चूड़ियाँ और उनकी झन-झन झन तक मानिक के कानों में साफ गूँज रही थीं। उसके पाँवों के पाजेब और नूपुर की रिन झिन रिन झिन, उसकी चूँदरी का चमकता हुआ रंग, उसकी काली आँखों में काजल की रेखा—जैसे कालिन्दी के उस पार घनश्याम की पंक्ति !! ओह ! आज भाग आने पर हीरा उसके बहुत निकट, बहुत साफ, बहुत मोहिनी दिखाई पड़ी !

धीरे धीरे स्कूल भरने लगा। लड़के आते, उसकी ओर उसके विचित्र चिन्तित मुख की ओर, साश्चर्य देखते। जान पहचान के मित्र दोआ-सलाम करते, हाथ मिलाते, कुशल और उदासी का कारण और यह तथा वह बातें पूछते। मानिक मशीन की तरह उनसे हाथ मिलाता, बोलता और उन्हें टालता रहा। मगर टहलने के अलावा और भी कुछ वह कर रहा था। इसका उसको भरपूर ज्ञान नहीं था। जैसे कोई मन्त्र से बँधा जीव हो। जैसे कोई मद से मस्त मानव हो।

एकाएक न जाने क्या उसके जी में आया। वह झपटा अपने क्लासरूम की ओर। क्लास-टीचर आ गये थे, हाजिरी



हो रही थी। मगर उसने न तो अध्यापक को अभिवादन किया और न उनकी ओर ध्यान ही दिया। सीधे अपने स्थान पर जाकर किताबें उठा क्लास के बाहर की ओर बढ़ा।

"कहाँ चले ? कहाँ चले ?" उसके सहपाठियों ने आवाज़ दी।

"मानिक—यु मिस्टर मानिकलाल !" क्लास टीचर ने कलम रोककर पुकारा उसको—"कहाँ जा रहे हो ?"

"सर," दरवाज़े पर रुककर उसने कहा—"मुझे बुखार चढ़ा है, जाने दीजिये।" टीचर ने उसका माथा और हाथ छूकर उसकी ओर साश्चर्य देखा—"अरे ऐसे ज्वर में तुम यहाँ आये ही क्यों ? जाओ, रास्ते में एक्का मिले तो उस पर बैठकर जाना। खाना खा चुके ?—नहीं। ठीक है, आज नागा कर जाना। पहला ही दिन है न ? बस नागा ही, उपवास ही, इसकी पहली दवा है। सुनते हो, कुनैन भूलकर भी न खाना। खतरनाक गरमी होती है उसमें।"

स्कूल हाते के वह बाहर हुआ—झूमता हुआ, बेहोश-सा। एक ओर बढ़ा। थोड़ी ही दूर जाने पर उसका एक दिली दोस्त और सहपाठी जल्दी-जल्दी स्कूल की ओर लपका आता दिखाई पड़ा। उसे देर हो गयी थी। मानिक को देख वह रुका, मगर, मानिक उसको देखकर भी रुका

नहीं। इस अपरिचित व्यवहार पर मित्र को आश्चर्य हुआ। अब बिना उसको रोके, विलंब होने पर भी, वह स्कूल की ओर न बढ़ सका।

"क्यों ?"

"क्या ?"

"कहाँ ?"

"क्या ?"

"कहाँ जा रहे हो बस्ता लिये ?" इस बार पास नहीं होना है क्या ?"

"क्या—हूँ—अच्छा मुझे जाने दो। आइ बेग योर पार्डन।" वह पुन आगे बढ़ा। उसके मित्र ने फिर उसे रोका।

"अरे यार कहाँ जा रहे हो—स्कूल उधर नहीं, इस ओर है।"

अब जैसे मानिक को कुछ आवेश आ गया। मित्र की वह मुहब्बत उसको बहुत बुरी मालूम हुई।

"अपना काम देखो, मुझे जाने दो। मैं कहता हूँ, हाथ छोड दो—चले जाओ। मेरा जी ठीक नहीं। उलझोगे तो मैं मार बैठूँगा।"

"वाहरे! चलो इधर—चलना होगा।"



नहीं, चाँदी नहीं, सोना नहीं—यह साला मरकट सामने आ फटा।

उसको अपमानित और परेशान करने के लिये बिल ज़रूरत ही पन्नालाल कागजों को उलटने और उलटने और उलटने लगे। मगर, देहाती उनके मनोभावों को कुछ न समझ सका। वह तो बहुत दिनों से जानता था इस बात को कि कचहरी वाले काम पड़ने पर कैसे "कठकरेज" हो जाते हैं। वह तो घर ही से, गालियों और धक्कों की आशा लगाये आया था। यह बात उसकी उस समय की चित्त-वनों से झलकती थी, जब मुख्तार से उसकी आँखें टक्कर खा जातीं। मुख्तार साहब ऐसे देखते मानो कह रहे हैं— "भाग, कगाल सूअर!" बूढ़े की आँखें उनकी आँखों से गिड़गिड़ातीं—"दोहाई धर्मावतार! बड़े सकट में पड़ा हूँ।"

धीरे धीरे तम्बाकू जल गया। पन्नालाल ने सोचा— क्यों जल गया? रोज तो इतनी जल्द नहीं जल जाता था। नौकर ने पाजीपना किया है। ठीक से चिलम सजायी नहीं। बेगार टालता है। अरे साला नौकर!

"अरे! अरे!!"

पन्नालाल भैंसे की तरह गरजे। देहाती बेचारा सन्न हो गया। उसने सोचा जरूर मुख्तार साहब खफ़ा हो गये।

क्योंकि उसने पन्नालाल के बारे में सुन रखा था कि वह गरीबों को देखकर खाँव-खाँव करने लगते हैं। उसे पूरी आशा हो गयी, उनकी बड़ी-बड़ी रकती-आँखें देख कर कि, अब उसकी गर्दन बिना नपे न बचेगी। यदि एक बार और वैसे ही "अरे अरे!" वह गरजते तो जरूर बूढ़ा देहाती भाग खड़ा होता। उसी समय उनका नौकर भय से भीत-सा कमरे में आया।

"साले," पन्नालाल की बहस करनेवाली घनी प्रतिभा उत्तेजना से चमक कर बरस पड़ी—बेचारे नौकर के सर पर—"सुअर, यह तूने हुक्का भरा है या ४२० किया है? जरा-सा मुँह से सटक लगाया और तम्बाकू खाक! खोपड़ी में अक्ल और अक्ल में होश रखकर काम नहीं करता!"

चिलम उठाकर, सर झुकाये नौकर चला गया। मन ही-मन मुख्तार बहादुर को ४२० के अलावा कोई और दफा न लगाने—और गालियाँ न देने के लिए धन्यवाद देता हुआ।

"तुम्हें क्या कहना है जी?" अब बूढ़े की ओर देख-कर, हाथ की किताब एक ओर फेंकते हुए, मुँह बिगाड़कर, उन्होंने पूछा।

"धर्मावतार!" देहाती गिड़गिड़ाया—"मेरा लड़का कल पकड़ लिया गया है।"

"३७८ में—चोरी में? हूँ, तुम तो देखते ही 'वही' मालूम पड़ते हो। कौन सी चीज चुराई थी उसने? खलिहान से सवासेर नाज या एक खचिया भूसा? या किसी का पेड़ काट लिया था?"

"नहीं धर्मावतार।" वह गिड़गिड़ाया—"हम गरीब हैं; मगर, चोर या बदमाश नहीं हैं। भगवान ही जानते होंगे। हमारे ऊपर बैठे बिठाये गजब टूट पड़ा है, सरकार।"

"फिजूल बको मत।" पन्नालाल ने डाटा—"जल्द बताओ—रुपये हैं? या केवल बातें बनाने आये हो? मुफ्त में—सुबह से लेकर शाम साढे सात बजे तक—मैं एक शब्द भी नहीं बोलता। मेरी फीस की पेशी बीस रुपये हैं। याने चालीस अधेली—अस्सी सूके। समझते हो?"

बूढा मुख्तार,साहब का मुँह बकर बकर ताकता रहा।

"रुपये अगर हों," उन्होंने पुन फटकार से कहा—"तो कोई हर्ज नहीं। लडके ने चोरी अभी तक न भी की हो, तो, कहो उससे अब सेंध मारे। मैं बचा लूँगा।"

"चोरी में वह नहीं पकडा गया है, हुजूर।"

"फिर?"

"खून मे! आपने सुना नहीं? हमारे गाँव की वस जवान और बेवा कोरिन को, परसों रात में, किसी ने हलाल

कर दिया। गड़ासे से पहले उसकी नाक उतार ली—फिर गर्दन। उसी के लिए, किसी और को न पाकर, दारोगाजी ने मेरे लड़के को और एक कोरी को गिरफ्तार किया है।"

"ऐसे ही गिरफ्तार कर लिया है? जरूर तुम्हारे लड़के का उस बेवा से कोई ताल्लुक रहा होगा।"

इसी समय नौकर चिलम तैयार करके ले आया। उसे यथा स्थान रखकर वह मुख्तार की ओर—कुछ कहने के लिए—ताकने लगा।

"क्या है?"

"कुछ लोग मिलना चाहते हैं?"

"कौन हैं वे? इसी देहाती बूढ़े के भाई या बाप तो नहीं हैं? तू आदमी पहचानता है या घास खाता है?"

"मैंने उनसे पूछा हुजूर..." दबते हुए नौकर ने कहा—"वे 'लड़का देखने' आये हैं।"

"इस वक्त लड़का देखनेवाले!" खीझे बड़े जोर से बाबू पन्नालाल—"इन भले जानवरों को इतनी तमीज भी नहीं कि ठीक वक्त से आवें। इतवार को आते तो क्या लड़का कहीं गायब हो जाता। बुलाओ!" नौकर के जाने पर, देहाती की ओर घूर कर उन्होंने कहा—"आज का दिन मनहूसियत ही में बीतता नजर आता है। हाँ—क्या



कहना है तुम्हें ? तुमने उस कोरिन का खून कैसे किया ?"

"मैंने नहीं धर्मावतार !" वह कलप चला अपनी कथा—"और मेरे बेटे ने भी नहीं। जाने भगवान, हम खूनी नहीं हैं। मगर गरीब हैं। जब कोई नहीं मिला तो गाँव के मोटे लोगों ने चार मुद्दइयों को गवाह बनाकर मेरे बेटे और उस कोरी को फसा दिया है।"

"लड़का देखनेवाले" भीतर आये। चकपकाते से। उन्होंने पन्नालाल के लम्बे चौडे, गठे और रोबीले शरीर को बड़े गौर से देखा। वे दो थे, जिनमें एक घुटा और खुला सर, बडी चुरुडी, माथे में लिपा चन्दन और अन्य अनेक कारणो से पुरोहित मालूम पडता था। पन्नालाल ने गम्भीर अभिवादन और साधारण आव-भगत के बाद उन्हे अपने पास आसन दिया।

"आज्ञा हो ?" उन्होंने पुरोहित से कहा।

"बाबूजी," पुरोहित ने बत्तीसों दाँत बिना हँसी के दिखाते हुए कहा—"हम आपके कुमार को देखने आये हैं।"

"देखनेवाले तो दस पाँच रोज ही आते हैं, महाराज," पन्नालाल ने अपना गभीर व्यापार आरम्भ किया—"मगर, ज्यादातर उनमे फिजूल के छोटे भाई ही होते हैं। केवल वक्त खराब करते हैं।"

'मगर," दूसरे व्यक्ति ने कहा, जो लड़की का पिता मालूम पड़ता था—"हम तो आप से सम्बन्ध करने आये हैं। हम जानते हैं, आपका वक्त क़ीमती है, मगर, लड़कीवाले की कैसी गरज होती है, यह वही समझ सकता है जिसके एक दो कन्याएँ हों।"

"ठीक कहा आपने," पन्नालाल ने कृत्रिम मुस्कुराहट में लपेटकर कहा—"मगर, लड़कीवालों को एक बात का ध्यान रखना चाहिये। उन्हें अपने ही जोड़ का रिश्ता करना चाहिये। पर ऐसा होता कहाँ है? जिसके पास कल खाने को दाना तक नहीं होता वह भी राजा बलि ही को अपना सम्बन्धी बनाना चाहता है। यही सारी ख़राबी की जड़ है। ऐसे ही लोग जब मेरे लड़के को देखने आते हैं, और अन्त में दाँत निकाल कर चले जाते हैं, तब मैं अपने समय का मूल्य आँकने लगता हूँ।"

"आप तो राजा हैं, मुख्तारजी।" पुरोहित ने कहा—"हम आपकी समता कहाँ पा सकते हैं, मगर, हम भी ईश्वर की दया से खाते पीते मजे में हैं।" लड़की के बाप की ओर इशारा कर पुरोहित ने कहा—"बाबू के आठ हल चलते हैं, नवपुरा गाँव में। उसमें दस आने इनकी ज़मीन्दारी है। प्रलाहाबाद के रहनेवाले हैं, जहाँ अपनी

निज की कोठी भी है। हमारी भी एक ही लड़की है। हम जरूर बड़े हौसले से उसे किसी योग्य वर और घर मे सौंपना चाहते हैं। आपसे छिपाना क्या है—परसों स्कूल में जाकर हमने आपके सुन्दर पुत्र को देख लिया है। खूब जोड़ी होगी। जैसे आपके पुत्र देव कुमार से हैं वैसी ही हमारी कन्या भी देवी-सी है। लड़का सत्रह का मालूम पड़ता है—है न?"

"अभी पूरे सत्रह साल नहीं हुए, पिछले महीने में सोलहवाँ पूरा है। लड़की की क्या उम्र होगी?"

"उसका तेरहवाँ लगा है," पुरोहित ने कहा—खूब जोड़ी है। अब आप जरा कुण्डली दीजिये—बच्चाजी की।"

पन्नालाल ने उठकर सामने की आलमारी खोली और उसमें से मानिक की कुण्डली का लम्बा पुलिन्दा बाहर कर ब्राह्मण के हाथ में दिया। तुरन्त ही विप्र देवता ने उसे सर्र-सर्र स्वर में फैला दिया। वह रह-रह कर कुछ पढ़ने और सोचने और अन्त में मुस्कराने लगे।

"ठीक है," ब्राह्मण ने कहा—"हमारे ही यहाँ आपको सम्बन्ध करना चाहिये। हर तरह से ठीक है।"

"तब महाराज!" पन्नालाल ने कहा—"असली बात

भी अब होनी चाहिये। मेरे एक ही लड़का है—आप तिलक और दहेज में क्या देंगे?"

"जो हुक्म हो," लड़की के बाप ने कहा—"हम हाज़िर हैं।"

"हम दो हज़ार तिलक लेंगे और उतना ही ब्याह के आँगन में। इससे कम में सन्तुष्ट न होंगे हम और इससे ज्यादा देने से लड़कीवालों की उदारता समझी जायगी। आख़िर जो देगा अपनी लड़की या दामाद ही को तो देगा।"

पन्नालाल का 'भाव' सुनकर एक बार पुरोहित और यजमान सन्नाटे में आ गये, यह चतुर मुख्तार ने भी भाँपा। वह घोर व्यापारी थे। उन दोनों को विचारने का मौक़ा देने के लिए, उन्होंने, इतनी देर बाद, पुन बूढ़े देहाती को घूरा।

"सुनते हो? मेरी फ़ीस बीस रुपये की पेशी है। तुमने ख़ून किया—ख़ूब किया है। मगर, रुपये लेकर मेरे सामने आओ तब तुम्हारा काम होगा। देखते ही हो, बिना रुपये के मैं अपने एक मात्र लड़के की शादी भी पक्की नहीं कर सकता। दुनिया के प्रत्येक काम के 'गणेशायनम' के पहले 'श्री' ज़रूरी है।"

अवश्य ही पन्नालाल के अन्तिम शब्दों का लक्ष्य वह

देहाती उतना नहीं था जितना वे थे जो मानिक को माँगने आये थे।

"मैंने खून नहीं किया है सरकार!" उसने आजिज़ी से पन्नालाल को पसीजना चाहा—"मेरे बेकसूर बेटे को पुलीस और गाँव के मुद्दइयों ने खून के सन्देह में गिरफ्तार करा दिया है। दोहाई मुख्तार साहेब की! हम बड़े गरीब हैं। हमें बचाइये।"

मगर, पन्नालाल ने उसकी बातें नहीं सुनीं। वह तो लड़की के पिता के मुँह पर पढ़ रहे थे—४००० नक़द!

कुन्दन को रात भर नींद कहाँ आयी। थोड़ी ही देर बाद जवाहर से उसकी बात-चीत बन्द हो गयी। वह बेचारी थकी माँदी, डरी, नव-यौवना ताकती-ताकती, बोलती-बोलती सो गयी। बूँदें धीमी पड़ीं, बादलों की मस्ती रुकी, पवन पागल हो चला और चपला चमत्कार-हीन होकर ओझल हो गयी।

मगर, बूढ़ी कुन्दन की आँखों में नींद नहीं। वह तो जवाहर को लेकर मन ही मन अपने हवाई क़िले गढ़ने में

परीशान थी। सोचती थी, कब सवेरा हो और वह अपने सौभाग्य का मुँह एक बार देखे। वह अवश्य ही सुन्दर है, यह विश्वास उसका पूर्ण था। उसने टो लिया था और अपने उस्ताद हाथों की बातों पर उसको पूरा भरोसा था। फिर भी, कब प्रभात हो, कब प्रभात हो!—वह सोच रही थी।

पौ फटने के आध घंटा पूर्व उसकी आँखें ज़रा भारी हुईं—लग गयीं। वह सपना देखने लगी। उसने देखा चाँदी के उजले सिंहासन पर एक जवान और परम रूपवती नायिका बैठी हुई है। उसके वस्त्र सुफेद हैं, सिल्की हैं। सुफेद ही इसराज उसके हाथ में—हाथी दाँती हाथ में—सुशोभित है। बजा रही है वह उस यन्त्र को और मोहिनी मन्त्र की तरह पीलू गा रही है। आह! दहलते दिल से कुन्दन ने उसकी ओर देखा। मानो कुछ-कुछ पहचानती है। फिर ध्यान से, सपने ही में, उसका गान सुनने और समझने की कोशिश करने लगी।

उसने समझा आखिर। वह गा रही थी वही वर्जित गान—"मैं उस पार चलूँगी आली, झाझरि नाव, नदी मतवाली।" ओह! कुन्दन पहचान गयी। वह उसकी महा-मातामही चम्पाकली बेगम थी। जिसे नीरस औरंगज़ेब ने

मरवा डाला था। उसी गान के लिए—उसी रागिनी के लिए!

थोड़ी देर बाद उसने अनुभव किया मानों गाना रोककर चम्पाकली उससे कुछ कह रही है, मुस्कराती-मुस्कराती। क्या कह रही है—वह सुन न सकी। सुना तो शायद उसने, पर समझ न सकी। और सम्भवत समझा भी उस समय, परन्तु याद न रख सकी! उसकी आँखें खुल गयीं। उसने देखा कमरे में उजाला है। उजाला है! पल भर में रात की घटनाएँ उसकी नस नस में नाच उठीं। झप से वह उठ बैठी और साश्चर्य, निद्रा से अभिभूत, जवाहर का मुँह निहारने लगी।

उस मुँह पर नजर पडते ही वह चकाचौंध होकर ठिठक-सी गयी। उसकी आँखे मानो गड गयीं उस पर। वह तो उसका पहचाना मुख था। कहाँ देखा था? देखा था—आह!—उसे याद आयी—स सपने में!! अरे—उस-अपरिचिता नवयौवना का मुँह, उसका उज्वल रग, ठीक-ठीक सपने की चम्पाकली बेगम की तरह था।

एक ही क्षण में कुन्दन को विश्वास हो गया कि वह लड़की उसका सौभाग्य है। उसने यहाँ तक अन्दाज़ लगा लिया कि हो न हो स्वय उसकी परदादी उसके उद्धार के लिए परलोक को छोड पिछली रात के बादलों और बूँदों के

साथ स्वर्ग से आसमान और आसमान से जमीन पर उतर आयी है। वह एक बार गद्गद्-सी हो गयी जवाहर की साँचा ढली काया देखकर, उसकी पतली कमर देखकर, कमी और ऊँची और सुडौल छाती देखकर, आदमी को पागल और पागल को आदमी कर देने योग्य—नारङ्गी की फाँकों से रस भरे !—ओष्ठ देखकर ! उसने मन ही मन कहा, यह जवाहर नहीं, हीरा है। हीरा ही नहीं, हीरे की खान है। उठ कर, पायताने जाकर, आँचल को पाँच बार पृथ्वी और अपने माथे से स्पर्श कर उसने जवाहर को—अपने सौभाग्य को—नमस्कार किया। मनमें यह सोचती हुई कि जरूर वह उसकी परदादी चम्पाकली की आत्मा है।

"किसके पावों की बलाएँ ले रही हो कुन्दन ? ओहो !!"

अब कुन्दन को होश हुआ। वह दो तल्ले में थी, सामने की खिड़कियाँ खुली थीं और उसकी पडोसिन वेश्या का यार खिड़की से आधा धड़ बाहर निकालकर भौंचका सा जवाहर की जवानी को देख रहा था। देख क्या रहा था—आँखों-आँखों पी रहा था।

"अरे बड़े !" कुन्दन ने झिड़क कर ऐय्याश की ओर देखा—"एक घर से दूसरे घर में झाँकना कहाँ की शराफत है ?"

"कौन है वह कुन्दन ?" इशारे से ऐय्याश ने दरियाफ्त किया। क्योंकि उसे डर था अपनी वेश्या का। इस पूछ-जाँच की आवाज उसके कानो तक पहुँचती तो अवश्य ही वह जाग उठती और सुना बैठती दस-पाँच खरी खोटी। व्यापारिक-स्पर्धा और जातीय-द्वेष उसके मनमें जाग उठता।

कुन्दन ने उसको कोई जवाब नहीं दिया। हाँ खिरकी के दरवाजे जरूर बन्द कर दिये। तुरन्त नीचे उतरकर, निबट-कर, वह झाड़ू देने लगी—इस लिए कि उसके यहाँ लक्ष्मी आ गयी थीं और उनके सामने घर अवश्य स्वच्छ और पवित्र रहना चाहिये।

अभी वह बटोर ही रही थी कि किसी ने दरवाजा खट-खटाया। कुन्दन ने देखा तो वही सामनेवाली का यार था। वह झुँझलाई उसके इस धृष्ट-आगमन पर।

'क्यों ?"

"वह कौन है, कुन्दन ?"

"तुमसे वास्ता ? मेरे घर में कालाचोर हो—तुम पूछने-वाले कौन ? ए भले मानस, घसको यहाँ से। उसी पचकी के पास जाकर अपनी क़िस्मत को पीसो।"

"वह बडी खूबसूरत है कुन्दन—कौन है ?"

"भागो यहाँ से—नहीं तो मैं कुछ कह-सुन बैठूँगी। तुम्हारी वो है, तुम्हारी वो है—बताऊँ ?"

"अच्छा कोई हो, मैं उसे चाहता हूँ, वह बड़ी खूबसूरत है। इतनी दूर से ही उसे देखकर मैं दीवाना हो गया हूँ।" ऐय्याश ने पाकिट में हाथ डाल कागज के दो टुकड़े बाहर किये "इन्हें लो—पेशगी।"

झपटकर पहले कुन्दन ने दस दस के उन नोटों को अपने हड्डीले-चंगुल में बटोर लिया। जैसे चील झींझड़े पर छापा मारे। फिर बोली—

"वह मेरी मौसी की बेटी है। वह बाजारू तो है नहीं। उसकी शादी हुई है।"

"झूठी कहीं की," ऐय्याश ने कहा—"खा अपने पिचके गालों की कसम ! अरे मैं सब समझता हूँ। इस गली में नयी चीजें जब आती हैं तो अक्सर वे किसी-न किसी की मौसी की बेटी या फूफी की साली ही होती हैं। जो हो—पेशगी बयाना मेरा है। मैं शाम को फिर खटखटाऊँगा। आह कुन्दन ! तुम्हारी मौसी की बेटी गजब की छोकरी मालूम पड़ती है। जान की कसम !"

ऐय्याश के चले जाने पर कुन्दन प्रसन्नता से पागल हो गयी। बेशक वह अपरिचिता उसका सौभाग्य है। तभी तो,

अभी उसने उसके घर में ताका भी नहीं और चाँदी बरसने लगी।

हीरा पर श्वसुर-पुर में पहुँचते ही, अपरचितों की आँखें बरसने लगीं। पूरे एक सप्ताह तक रामपुर की लुगाइयाँ आ-आकर उसका मुँह देखती रहीं। बहुत सी रिश्तेदारिनों ने, "मुँह देखाई" मे, उसे नकद रुपये, अगूठियाँ या दूसरे आभूषण भी दिये। कइयों ने उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की, सुन्दर स्वास्थ्य की, प्रसन्न और आकर्षक वदन की प्रशसा की। साथ ही, कइयों ने उन प्रशसा करने वालियो की आँखों में मौखिक "मिरचा" और "राई" भी डाली—इस लिए कि नई वधू पर किसी की टोना-भरी कुदृष्टि न लग जाय।

उसकी सास को किसी ने बता रखा था कि लड़की का रग काला है। इसी से, हीरा के गृह प्रवेश के पूर्व उसके मन में उसके रूप के बारे में अनेक दुर्भावनाएँ थीं। वह सोच रही थी, हो न-हो लड़की का रग कजरौटे-सा हो। अगर ऐसा हुआ तो जरूर उसके पुत्रसे उसकी न पटेगी।

घर की शान्ति भग हो जायगी। लड़का वे हाथ हो जायगा। लड़के के वे-हाथ होने का हीरा की सास को दृढ विश्वास था, क्योंकि, प्रथम पतोहू की मृत्यु के बाद उसके पूत के जो लच्छन हो गये थे, उनसे वह परिचित थी।

मगर, पतोहू का मुखड़ा, उसकी सुगठित देह, देखते ही उसके सारे सन्देह समूल सुदूर सिधार गये। वह बहुत देर तक वधू का मुँह अपने दोनो हाथों में सँभाले उसे भर-भर नैन निहारती रही। उसने उस मुँह मे कुलीनता देखी, दया के दर्शन किये, प्रेम की परछाँई पाई। वह फूल उठी प्रसन्नता से। उसने हीरा के माथे को, दोनो गालो को, पके होठों को चूम चूम लिया।

हीरा की दो जेठानियाँ थीं। पहले ही दिन कुल देव के स्थान पर प्रणाम पूजा करने के बाद वे दोनों उसे एकान्त में लिवा गयीं। उन्होंने उसके आगे, चाँदी की तश्तरी में, दही और गुड रखा—श्वसुर गृह का प्रथम और पवित्र जल-पान। मगर, उसकी इच्छा उस समय जल पान की नहीं थी। वह तो बराबर अपने घर और घरवालों को सोच रही थी। सोच रही थी, लडकियाँ कैसी अभागिनी होती हैं जो होश सँभालते ही अपनो द्वारा अनजानों के हवाले कर दी जाती हैं। क्या यह सभव नहीं कि जो

अभी उसने उसके घर में ताका भी नहीं और चाँदी बरसने लगी।

हीरा पर श्वसुर-पुर में पहुँचते ही, अपरिचितों की आँखें बरसने लगीं। पूरे एक सप्ताह तक रामपुर की लुगाइयाँ आ-आकर उसका मुँह देखती रहीं। बहुत सी रिश्तेदारिनों ने, "मुँह देखाई" में, उसे नकद रुपये, अगूठियाँ या दूसरे आभूषण भी दिये। कइयों ने उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की, सुन्दर स्वास्थ्य की, प्रसन्न और आकर्षक वदन की प्रशंसा की। साथ ही, कइयों ने उन प्रशंसा करने वालियों की आँखों में मौखिक "मिरचा" और "राई" भी डाली—इस लिए कि नई वधू पर किसी की टोना-भरी कुदृष्टि न लग जाय।

उसकी सास को किसी ने बता रखा था कि लड़की का रंग काला है। इसी से, हीरा के गृह प्रवेश के पूर्व उसके मन में उसके रूप के बारे में अनेक दुर्भावनाएँ थीं। वह सोच रही थी, हो न-हो लड़की का रंग कजरौटे-सा हो। अगर ऐसा हुआ तो जरूर उसके पुत्रसे उसकी न पटेगी।

घर की शान्ति भंग हो जायगी। लड़का बे हाथ हो जायगा। लड़के के बे-हाथ होने का हीरा की सास को दृढ़ विश्वास था, क्योंकि, प्रथम पतोहू की मृत्यु के बाद उसके पूत के जो लच्छन हो गये थे, उनसे वह परिचित थी।

मगर, पतोहू का मुखड़ा, उसकी सुगठित देह, देखते ही उसके सारे सन्देह समूल सुदूर सिधार गये। वह बहुत देर तक वधू का मुँह अपने दोनों हाथों में सँभाले उसे भर-भर नैन निहारती रही। उसने उस मुँह में कुलीनता देखी, दया के दर्शन किये, प्रेम की परछाँई पाई। वह फूल उठी प्रसन्नता से। उसने हीरा के माथे को, दोनों गालों को, पके होठों को चूम-चूम लिया।

हीरा की दो जेठानियाँ थीं। पहले ही दिन कुल देव के स्थान पर प्रणाम-पूजा करने के बाद वे दोनों उसे एकान्त में लिवा गयीं। उन्होंने उसके आगे, चाँदी की तश्तरी में, दही और गुड़ रखा—श्वसुर गृह का प्रथम और पवित्र जल-पान। मगर, उसकी इच्छा उस समय जल पान की नहीं थी। वह तो बराबर अपने घर और घरवालों को सोच रही थी। सोच रही थी, लड़कियाँ कैसी अभागिनी होती हैं जो होश सँभालते ही अपनों द्वारा अनजानों के हवाले कर दी जाती हैं। क्या यह संभव नहीं कि जो

लड़की पिता का घर न छोड़ना चाहे—न छोड़े ? क्या यह सभव नहीं कि वह तुरन्त रतनपुर को लौटा दी जाय ? आह,—रतनपुर ! जहाँ पर उसकी करुणामयी जननी उसके लिए रोती होगी। रतनपुर—जहाँ उसका वृद्ध, गरीब और दयालु पिता उसके अभाव का आन्तरिक आन्दोलन-मय अनुभव करता होगा ! रतनपुर जहाँ उसका वह साथी . वह चिर-परिचित वह मानि "मुझे जल-पान की इच्छा नहीं है।" तश्तरी सामने से जरा खसकाती हुई वह जैठानियों से बोली। अपने मर्म-वेधी विचारों से जागकर।

"अरे ! अरे !!" वधू की इस मूढता पर जेठानियाँ आश्चर्य और अज्ञात भय से चमक उठीं। उस भय से जिसका सबन्ध अन्धविश्वास से अधिक है। कैसी लड़की है ! दही-गुड़ ही की रसम मे छींक रही है।

मगर, उनकी आँखें देखते ही हीरा को कुछ स्मरण हो आया। याद आयी उसकी माँ की वे शिक्षाएँ जो उसने, इधर आने के पूर्व, उसे दी थीं। बताया था—देवता को प्रणाम करना, सास के पाँव धरना, जेठानियों के गोड़ लगना, घूँघट काढे रहना, चञ्चलता न प्रकट करना, उनकी बातें ध्यान से सुनकर तदनुसार आचरण करना, पति की पवित्रता से—प्रेम से—सेवा करना। उसे फौरन

यह याद भी आयी कि आरम्भ में दही-गुड खाने की प्रथा भी है। वह जानती है—देख चुकी है। भूख हो या न हो—मन करे या न करे, दही गुड करना ही—खाना ही—उचित है।

उसने अपनी कोमल-सुडौल अँगुलियों से दही गुड के पाँच सुकुमार ग्रास मुँह में रखे। जेठानियों ने भी इस छोटी-सी घटना पर विशेष ध्यान नहीं दिया। जब वह हाथ धो चुकी तब उनमें से एक ने बढकर कहा—"मैं तुम्हारी बडी जेठानी हूँ।"

हीरा ने अचल से पाँच बार उसके चरण छूकर उसका अभिवादन किया।

"और मैं छोटी जेठानी हूँ। मेरे भी पाँव लगो बहन।"

हँसकर दूसरी ने भी उससे अपने पाँव छुआए। हीरा ने देखा उसकी बडी जेठानी अधेड थी। उसके चेहरे पर यौवन की सुकुमारता नहीं, बनावट की और अस्वस्था की कठोरता चमक रही थी। उसी ने उसके दही-गुड़ न करने पर खिखाई से "अरे, अरे!" कहा था। उसका मुँह—धूर्त-सा, प्रभ हीन-सा—हीरा को रुचा नहीं।

मगर, दूसरी बुरी नहीं लगी। उसकी उम्र बीस या इक्कीस की सी थी वह स्वस्थ थी, गोरी थी, हँसमुख थी

और जवान भी थी। उस की आँखों से पता चलता थ
कि उसमे दया है। उसकी मुस्कराहट में प्रेम और सहृ
यता मँहक रही थी।

आने के चौथे या पाँचवें दिन बड़ी जेठानी ने हीरा से प्रश्न
कि रामपुर का यह उसका घर' उसको पसन्द है, कि नहीं

हीरा ने सरलता से कहा—"नहीं।"

"नहीं?" जेठानीजो आश्चर्य से चमक उठीं—"नहीं
यह पत्थर का पक्का, सगीन, सुन्दर, हवादार, भला मकान
तुम्हे पसन्द नहीं? तुम किस महल की रानी हो बहन, जो
यह तुम्हे पसन्द नहीं? जरा सुनूँ।"

घर की सभी औरतें वहाँ थीं। हीरा की सास ने भी
यह सवाद चाव से सुना था। उसे अपनी बड़ी पुत्र-बधू की
अकारण तीव्रता रुची नहीं। उसने हीरा ही का पक्ष लिया

"वाहरे!" हीरा की जेठानी को सास ने प्रेम से डाटा—
"बड़ी मेरी पतोहू को कड़ी-कड़ी सुनानेवाली! तुम्हे न
जँचता होगा तेरे बाप का घर, पर सभी लड़कियाँ काठ
की नहीं होती। मेरे भी एक लड़की थी और उसकी ससु-
राल हमसे हजार गुना चढी-बढ़ी थी, पर उसे भी वहाँ के
महल नहीं पसन्द थे। स्वय मैं, जब छोटी थी, इस घर
को रूखा सा देखती थी।"

"मेरे बाप का घर महल नहीं है माँ," हीरा ने सास को बताया, "यह कौन नहीं जानता। मिट्टी की दीवारें खड़ी हैं—कहीं छाईं, कहीं अनछाईं। मगर, इन बड़ी-बड़ी हवादार कोठरियों से मुझको वे अधिक सुखद मालूम पड़ती हैं।"

"तो चलो," छोटी जेठानी ने मुस्कराते हुए हीरा से कहा—"वहीं हम लोग चल कर रहें। अब तो तुम्हारे ही मन का करना होगा। दोगी हमें वहाँ रहने ?"

"मेरे घर में मजूरिनें नहीं हैं बहन !" हीरा मुस्कराई, मधुरता से, "बरतन अपने हाथ से मलना होगा।"

"हट !" मचलकर छोटी जेठानी ने कहा।

"अब आ गयी हो तुम न—बहन !" बड़ी जेठानीजी बोलीं—"अब यहाँ से भी मजूरिनों का पौरा उठा ही समझो। देखूँगी, माँने तुम्हें कितना बरतन माजना सिखाया है।"

"तुम बरतनो को जूठा करती करती थक जाओगी बहन," हीरा ने उत्तर दिया "पर मैं उन्हें साफ करते करते न थकूँगी। देख लेना।"

दावा भरे प्रेम से जेठानी ने कहा—"अच्छा रे अच्छा !

सास ने कहा—"जो लड़की बरतन न माँज सके, वह

भी कोई लडकी है। अमीरी हो सकती है मजूरिनों से बरतन मँजाने में, मगर स्वयं माँजने में जो पवित्रता रहती है, उसपर लाख अमीरी निछावर है। मुझे तो मजूरिन का माँजा चाँदी का गिलास भी दूर ही से गँधाता है। मैं अपने हाथ न हिलाऊँ तो मुझे दाना न पचे—पानी न घूँटा जाय।"

हीरा के व्यवहार के लिए जो हवादार कोठरी मिली थी उसमें अब तक उसके साथ उसकी सास और छोटी जेठानी भी सोती थीं। मगर जिस दिन "फूल-सेज" की सायत थी उसके सबेरे बात-ही-बात मे छोटी जेठानी ने उसको बताया कि आज से तुम हमारे साथ नही, उसके साथ सोओगी जिसके साथ सोने के लिए रतनपुर से यहाँ आयी हो। हीरा की समझ में जेठानी का इशारा आ गया। वह काँप सी उठी उक्त सवाद पर। उसका चेहरा अनायास साँवले से कृष्ण हो गया। होठ उसके सूख-से उठे।

"क्यों-क्यों, क्या इस घर की तरह हमारा देवर भी तुम्हे 'पसन्द' नही?" छोटी जेठानी ने प्रेम-भरे व्यग से पूछा।

"मैं तुम्हारे ही पास सोऊँगी, बहन!" हीरा ने अजिजी से कहा—"इस जगह तुमसे अधिक मुझको कोई भी पसन्द नहीं। तुम बड़ी प्यारी हो।"

"हट !" जेठानी बोली—"निरी बची है। अरे एक रात उनके साथ भी काट—वह कोई पराये नहीं हैं। वह भालू बाघ भी नहीं है—राम जानें! मैं इस बात की क़सम तक खा सकती हूँ।"

"मैं तो तुम्हारे ही साथ सोऊँगी—कोई दूसरा मेरी कोठरी में आवेगा तो मैं भाग खड़ी होऊँगी। बताये देती हूँ।"

"कह ले आज इस तरह," जेठानी ने अनुभव की दोहाई दी "मगर हमेशा यह पागलपन न बोलेगा। 'चार ही दिन बाद—बहन !—हम लोग दूसरी हो जायँगी और वह 'दूसरा' पहला हो जायगा।"

रात को खा पी चुकने के बाद हीरा और उसकी वही जेठानी उसकी कोठरी में बैठी बातें करती रहीं। वह उसको समझा रही थी कि, तुम्हारे 'वह' जो हैं बड़े मनचले हैं। तुम्हारी बहादुरी तब समझी जायगी जब तुम उन्हें अपनी मुट्ठी में कर लोगी। ऐसा जादू मारो, ऐसी मोहनी डालो कि कोठरी के बाहर निकलने का नाम तक न लें—हाँ।"

उसी समय हीरा की सास ने उसकी जेठानी को बाहर बुलाया। हीरा मन ही-मन समझ गयी, अब वही घटना घटेगी। वह घटना! उसकी छाती धड़कने लगी। उसका कलेजा मुँह को आने लगा। वह सेज पर इस तरह करवटें

बदलने लगी जैसे गरम तवा पर बेकल जल की बूँदें। वह सोचने लगी कि किस तरह कहाँ भाग जाय जो इस आन्तरिक अपमान से उसके प्राण छूटें।

बाहर किसी को आवाज सुनायी पडी। उसे मालूम पड़ा गोया उसकी वही जेठानी किसी से बातें कर रही है।

"जानते थे कि आज कहाँ सोना होगा," उसकी आवाज सुनायी पडी "फिर भी बाहर ही सो गये! बनते हो।"

"चुप रहो, मुझे नींद लगी है।"

"अरे-अरे! मेरे ऊपर क्यों गिरे पडते हो! उस ओर जाओ—उधर गिरो।"

"इसीलिये बुलाया है? मैं बाहर सोऊँगा। यहाँ गरमी ज्यादा है।"

"बाहरे गरमी ज्यादा है। मने-मने भावे, मूड हिलावे! बाहर कौन है जिसके लिए वे कच्च हो? क्या उस गलीवाली 'वह' आयी है?"

"चुप!"

"अरी माँ।" जेठानी खिखाई से बोली—"इतनी जोर से मेरा मुँह दबा दिया! बडे पहलवान बने हैं। देखो इसी तरह उस बच्ची का मुँह भी न दबा देना—पहलवानी न दिखाना। नहीं तो ठीक न होगा। मैं चिताये देती हूँ।"

जैसे बरबस हीरा के पति को उस कोठरी में ढकेल जेठानी ने, खिलखिलाते हुए, बाहर से साँकल चढ़ा दी।

मानिकलाल स्कूल से भागकर नीलो नदी नारायणी के पास आया। गर्मी के दिन थे। भगवान तपन ताव से तप रहे थे। नारायणी की साँवली रेतको उत्तेजित पवन झरें झरें चारों ओर बगेर रहा था। प्राय मध्याह्न का समय था। अब तट पर स्नानार्थी नहीं रह गए थे। कुछ विलम्ब के कारण और बहुत कुछ ताप के कारण। नहीं तो, ठंढे दिनों में दोपहर के बाद तक रतनपुर वाले नारायणी को घेरे रहते थे।

वह किनारे पर टहलने लगा, न जाने क्या क्या-सोचता हुआ। उसका माथा चक्कर खा रहा था, उसकी छाती जोर-जोर से धड़क रही थी, उसकी आँखों के सामने का दृश्य मानों उसको दिखाई नहीं पड़ रहा था। रेत जल रही थी, मगर उसके पाँवों को उसका अनुभव नहीं हो रहा था। पवन उसके रंग हीन मुँह को ताककर कभी नरायणी के

अचल की नन्ही नन्ही ठण्ढी, अलग बूँदें फेंक मारता था, कभी तट की गर्म रेत से बिखरे बालों को, माथे को, सारे अंग को नहला देता था। लेकिन, उस समय वह गोया शीत और उष्ण से ऊपर के लोक में था।

योंही बहुत काल तक हाहाकार में घूमने के बाद एकाएक उसका जी इधर से उचटा। वह तट से करारे की ओर बढ़ा। शायद यह सोचकर कि घर चले। मगर करारे पर आते-आते उसका विचार पुन पलट गया। घर के नाम ही से, न-जाने क्यों, उसके मनमें एक प्रकार की अश्रद्धा-सी भभक उठी।

करारे पर एक पीपल का पेड़ था। बहुत घना, लम्बा-चौड़ा और बहुत पुराना। उसकी जड़ मे वहाँ के हिन्दुओ ने महादेव, हनूमान, शीतला, गदाधर और न जाने किन-किन देवी-देवतो की मूर्तियाँ स्थापित कर रखी थीं। स्नानकर घर लौटते समय रतनपुर के आस्तिक हिन्दू और उनकी स्त्रियाँ उन मूर्तियों पर नारायणी का जल अपने लोटे या घड़े से निकाल कर चढ़ाती थीं। चार बूँद छिड़कने के बाद ही पुरुष आँखें मूँदकर कुछ मन्त्र या पवित्र नाम अथवा हनूमान-चालीसा के छन्द बुदबुदाते, स्त्रियाँ यह या वह प्रार्थना करतीं। कुछ माँगती और मिलने पर कुछ सेवा-पूजा

करने का मानसिक वचन देतीं। उसी पेड के नीचे मानिक भी जाकर खड़ा हो गया। उन मूर्तियों की ओर निहारने लगा। वह मन-ही-मन उनसे कहने लगा कि तुम यदि वरदान दे सकती हो तो दो। मैं भी कुछ चाहता हूँ, कामना पूर्ण होते ही तुम्हारी पूजा और सेवा करूँगा।

मगर वह चाहता क्या है? उसके ही मन ने उसके मन से पूछा। लेकिन, उसका ही मन उसको साफ जवाब न दे सका। वह क्या चाह सकता है? उसके चाहने योग्य चीज ही कहाँ है? ना वह कुछ नहीं चाहता। उसने देखा, हनूमान के माथे पर पीपल की जड़ से निकल कर एक काला कीड़ा मटरगश्ती करने लगा। महादेव के आस-पास के अक्षतों को गिलहरियाँ चुन-चुनकर खाने लगीं। एक तो पिंडी के माथे पर तक सवार हो गयी—उन चावलों के लिए। उसने सोचा—वाह! अच्छे देवता हैं। अच्छे इनके पूजनेवाले हैं। ये भला वरदान क्या देंगे। पत्थर से कहीं रस निकलता है?

वह हटा वहाँ से और जरा दूर जाकर एक पत्थर पर बैठ गया। पहले वह मुँह से सीटी बजाकर किसी गजल का स्वर हवा में भरने लगा। फिर जोर से कुछ गाने लगा। वह प्रेम की कोई कविता गाने लगा।

"मुझे प्यास लगी है" उसके गान की प्रथम पंक्ति का अर्थ था, और शेष का था—"ऊपर से जीवन से लदे बादल मुझसे पूछते हैं—दूँ, दूँ ? नीचे से नदी और नद, पुष्करिणी और पुष्कर मेघों की प्रतिध्वनि की तरह पूछते हैं—दूँ, दूँ ? मगर, हाथ फैलाने में, लेने मे, माँगने में मुझे लाज लग रही है। आह ! मुझे प्यास लगी है ! "

इतने में धम्म से कुछ गिरने की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। उसने मुड़कर पीपल की ओर देखा। देखा मूर्तियों के सामने कोई दुबला, हड्डीला, रूखा और लम्बा आदमी पागलों की तरह खड़ा था। उसके सर के बाल अस्त-व्यस्त, उसकी आँखें खूनियों सी और मुख के भाव भयप्रद थे। गदाधर की मूर्ति पीपल की जड़ से बीस हाथ की दूरी पर औंधी पड़ी थी। शायद उसी ने उसको उठाकर फेंक दिया था। हाँ हाँ उसी ने—क्योंकि, वह दूसरी मूर्ति भी उठा रहा था—फेंकने के लिए। वह ! हनूमान की मूर्ति भी धम्म से उसने दूर फेंकी ! वह ठठाकर हँसने लगा, पागलों की तरह।

वैशाख की दोपहरी में, नारायणी के तट पर, पीपल के नीचे उस विचित्र व्यक्ति को दूसरा कोई भी देखता तो बिना डरे न रहता। मगर मानिक डरा नहीं। अपने स्थान से उठकर वह उसकी ओर बढ़ा।

"यह क्या करते हो ? मूर्तियों को क्यों फेंकते हो ? उठाकर उन्हें फिर जहाँ का तहाँ रखो, नहीं तो कोई दूसरा हिन्दू देखेगा तो बिना तुम्हारी दुर्गति बनाये न रहेगा।"

मानिक की बातें सुनकर वह उसके निकट चला आया। सिर से पैर तक उसको गुरेरने लगा—बड़ी-बड़ी आँखें निकाल कर।

"तुम कौन हो ?" मानिक ने पुन पूछा।

"पारसनाथ।" उस अधेड़ उन्मत्त ने उत्तर दिया।

"ठीक है," मानिक ने कहा—"होगे तुम पारसनाथ, मगर, इन मूर्तियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। इन्हें इस तरह फेंक कर क्यो अपमानित कर रहे हो ? तुम कैसे हिन्दू हो जो हिन्दू-मूर्तियों को भ्रष्ट कर रहे हो ?"

"मैं हिन्दू नहीं हूँ—पारसनाथ हूँ। मैं ठाकुर पारसनाथ सिंह हूँ।"

"पागल है क्या !" मानिक ने अर्द्ध-स्वगत भाव से कहा। मगर, उस उन्मत्त ने उसकी बातें सुन लीं।

"हाँ, हाँ, तुम मेरा नाम जान गये। इलाहाबादवाले मुझे वही कहते हैं, मुन्शीगञ्जवाले भी वही कहते हैं। मैं हिन्दू नहीं, पारसनाथ हूँ। पारसनाथ भी नहीं, पागल हूँ। भागो—भागो! हू हू हू—हा हा-हा—मैं पागल हूँ।"

पागल को बकता छोड़, मानिक फेंकी हुई मूर्तियो की ओर बढ़ा, उन्हे उठाकर यथास्थान रखने के विचार से। पारसनाथ समझ गया उसकी उस इच्छा को। वह झपटकर उसके पास आया—

"खबरदार !"

"क्यों ?—हटो !"

"मैंने उन्हे फेंका है—तू उठानेवाला कौन ? जानता नहीं, मैं शराबी हूँ ? इस वक्त नशे में हूँ। जानता नहीं, मेरी लड़की ब्याही जाने को है ? पन्द्रह बरस की हो गई है। जानता नहीं, गाँव भर मेरी ओर अँगुली उठाता है ?"

"उफ़ !" मानिक खीझा, "निपट पागल है। अरे लड़की के ब्याह और मूर्तियो को फेंकने से क्या सम्बन्ध है ? जाकर कहीं छिप रहो—मेरी बात मानो। नहीं तो शाम तक पागलखाने में भर दिये जाओगे।"

"धत्" बावला बोला, 'मैं वैसा पागल नहीं हूँ, जिसे डाक्टर और पुलीस पहचान सकें। चार आदमी का सामना होते ही मैं पारसनाथ हो जाता हूँ। एकान्त होते ही मैं पागल हो जाता हूँ। एकान्त में अखिल विश्व जैसे घृणा-भरी आँखों से मुझे घूरने लगता है। मेरी स्मृतियाँ पिशा-

चिनियों-सी मेरे चारों ओर नाचने लगती हैं। वे धिक्कारती हुई मुझे सुनाती हैं—यह पारसनाथ है। यह अपने भविष्य को भूलकर शराब पीता था। इसकी एक लड़की है, जो अब है भी या नहीं इसको पता नहीं। वह ब्याहने योग्य हुई, मगर यह पियक्कड़ उसे व्याह न सका। सारी सम्पत्ति तो इसने शराब में उड़ा दी, लड़की को ब्याहता कैसे। नगर वाले इसे देख कर लज्जा से गड़ जाते हैं और यह बे-हयाई की हँसी हँसता है। पड़ोसी इसे देखकर नाक सिकोड़ते हैं, नफ़रत से, यह मुस्कराता है, बेशर्मी से। लड़की इसकी बिना ब्याही, बेचारी, निकल गयी। न जाने किसके साथ।" जैसे पारसनाथ पुन भभक उठा, कुछ सोच कर—'धत्—धत्—धत्। मेरा पश्चात्ताप मुझे मारे डालता है। मेरी इज्जत डूब गयी है। मेरी एक-मात्र, गऊ-सी भोली लड़की मुझे अपमान और चिन्ता से छुड़ाने के लिए न जाने कहाँ भाग गयी है। मैं पागल की तरह उसे ढूँढता हूँ। शहर-शहर में, गली-गली में, उसका नाम ले-लेकर पुकारता हूँ।"

मानिक को आश्चर्य-चकित छोड़ वह एक ओर झटके से बढ़ा—बकता हुआ।

"डेढ बरस से वह गायब हैं, डेढ़ बरस से मैं चारों



ीर उसको ढूँढ रहा हूँ। जैसे अपार पारावार में भटको
ई नाव किनारा ढूँढती है।"

"सुनो तो " मानिक ने उसका पीछा करते हुए, पूछा
ससे—"नाम क्या है तुम्हारी लड़की का?"

"ओह!" वह भागता हुआ बोला—"उसका नाम
त की तरह हमारे पीछे पड़ा हुआ है। यह देखो इधर है,
ह देखो उधर है। मेरे चारो ओर उसी का नाम डेढ़ बरस
नाच रहा है। तुम देख लो, पढ़ लो—मैं अपने मुँह से
हीं बतलाऊँगा। उस नाम को। तुम हँसोगे, मेरा अपमान
रोगे।"

वह तीर की तरह भाग चला, बिना लड़की का नाम
ताये। मानिक ने निराश होकर और निरा पागल समझ
र उसका पीछा करना छोड़ दिया।

पारसनाथ सिंह मुशीगञ्ज के रहनेवाले, ऊँचे क्षत्रिय हैं। एक ज़माना
ा जब उनके बाप के क़ब्ज़े में आधा मुशीगञ्ज था।
नका तीन खण्ड का पक्का, पुराने किते का, मकान देखने से

भी इस बात की पुष्टि होती है कि उसका निर्माता जरूर कोई असाधारण श्री-पात्र रहा होगा।

पारसनाथ लड़कपन में अक्सर शराब पीते थे। वह इस तरह कि उनके पिता बड़े शौकीन और विलासी थे। वह रोज भोजन के साथ या पहले अथवा बाद—जैसी जब मौज हुई—बोतल का सेवन करते थे। पारस की माँ उनको छोटा ही छोड़कर मर गयी थी, अब उनके पिता ने अपने रिश्ते की एक गरीब विधवा को अपने यहाँ टिका रखा था। वह जब तक मर नहीं गयी, पारसनाथ के पिता की गृहस्थी के आटा-दाल की मालकिन रही। मगर, ताली के उस गुच्छे की नहीं जिसकी सहायता से पारसनाथ के पिता की प्रियतमा पेया के पैसे सन्दूक के बाहर निकलते थे।

मुशीगञ्ज वाले इस बात को जानते थे कि पारस के पिता उस विधवा क्षत्राणी से केवल आटे दाल का भाव ही नहीं पूछते थे, बल्कि, कुछ और भी करते थे। पारस के घर की जवान कहारिन ने सारे कस्बे में यह डौंडी पीट दी थी कि उनके पिता ने उस विधवा को रखा है। वह मटक-मटक कर, मानों कोई बड़ा भेदोद्घाटन कर रही हो ऐसा मुँह बना कर, अपने जानकारों, मित्रों, और पड़ोसियों को बताती—



"ऐसी राँड का मुँह जले। दिन में तो सुलच्छनी बनती है, एकादशी मनाती है, आँख मूँदकर ऊपर मुँह उठाकर, मन-ही-मन बुदबुदाती हुई सूरज देवता से अपने मरे आदमी लिए वैकुण्ठ माँगती है। लेकिन रात हुई कि उसने केंचुल बदली। माँग सँवार, चोटी सुधार, सुरग सारी पहन, आँखों में काजल और ओठों पर पान की रेखा सजाकर वह ठाकुर को खिलाने पिलाने बैठती है। ओह, बाबा बासदेव की दोहाई! मैंने इन्हीं आँखों से देखा है। ठाकुर उसको अपनी पलेथी पर बैठा कर गले में हाथ डालकर, अपने हाथ से उसके मुँह में रोहू की कलेजी डालते हैं।"

मुशीगञ्ज वालों का तो उस कहारिन पर भी सन्देह था। विधवा क्षत्राणी से अधिक वहाँ वाले, कहारिन को पारसनाथ के पिता की चहेती मानते थे। अक्सर कहारिन का पति बारह-बारह बजे रात को उसको बुलाने के लिए ठाकुर के घर जाता। अक्सर वह लौटते वक्त रास्ते में उसको डाटता जाता—"हरामजादी! जल्दी छुट्टी लेकर नहीं आ जाती। वहाँ बैठी बैठी यह-वह किया करती है। एक दिन तेरी नाक काट लूँगा।"

मुहल्ले वाले कहार की ये बातें सुनते और मन ही-मन गम्भीर और प्रसन्न होते। गोया कहारिन और ठाकुर का

भेद उन्हें बड़ा अनमोल मालूम पड़ता। वे आपस में फुस-फुसकर उसकी चर्चा करते और पारस के पिता तथा कहारिन को छिछले पानी में बहाते। मगर यह सब पारसनाथ के पिता के जीवन भर एक रूप से होता रहा। न तो उनको हलका या चरित्र-हीन समझने वालों ने आधे मुशींगञ्ज के ज़मीन्दार को सलाम करना बन्द किया और न कहार ने अपनी कहारिन की नाक ही काटी।

पारसनाथ आरम्भ में छिपा कर शराब पीते थे। जब उनके पिता इधर या उधर हो जाते तब वह खुली बोतलों पर छापा मारते। पहले ध्यान से देख लेते कि कितनी शराब है। फिर इच्छानुसार पीकर, बोतल में उतना ही पानी मिला देते। पारस के पिता को कुछ खबर भी न होती। और खबर होने पर भी शायद वह उनको वैसा करने से न रोकते। क्योंकि, त्योहारों पर तो वह स्वयं उनको पीने देते थे। उनका कहना था कि क्षत्री के लिए शराब और माँस बुरी चीज़ें नहीं।

मगर पारस की जब शादी हुई, उनकी पत्नी घर में आयीं तब उन्होंने शराब बिलकुल छोड़ दी। उसकी पत्नी पवित्रता और धर्म के उपासक किसी पुराने क्षत्रिय की दुहिता थी। उन्हें जब एक दिन पारस पिये हुए मिले तो



बड़े प्यार से, दया से, दारू का उन्होंने विरोध किया। वह इतनी सुन्दरी, सरला, सुशीला थीं कि पारस उन पर मुग्ध थे। उन्होंने उनके इच्छानुसार तुरन्त मदिरा का त्याग कर दिया।

क्रमश पहले पारस के पिता परलोक वासी हुए—भारी सम्पत्ति छोड़ कर, फिर वह विधवा क्षत्राणी मरी—बदनामी छोड़ कर और एक दिन अचानक उनकी प्रियतमा भी चल बसी—सात बरस की एक लड़की छोड़ कर। यह सब देखते ही देखते हुआ। मरने के पूर्व उनकी प्राण-प्यारी ने हाथ जोड़कर उनसे कई प्रार्थनाएँ कीं। एक यह कि वह दूसरी शादी न करेंगे। विमाता आयेगी तो बच्ची को तकलीफ़ होगी। वह अपनी नूतनता का जादू डालकर पारस को पागल कर देगी, कर्त्तव्य-च्युत कर देगी और उस प्यारी बच्ची को भूल जाने के लिये विवश कर देगी। दूसरी बात यह कि वह दारू न पियेंगे। तीसरी उसकी इन मूर्तियों की, जिन्हें स्वय उसने घर में पूज रखा था, वह स्वय पूजा किया करेंगे।

पारसनाथ बहुत दिनों तक उदास रहे। घर उनको भयानक लगता, साँय-साँय करता, उस प्रेम पुतली के बिना। वह उसको बहुत याद करते—बहुत सोचते।

उनका जीवन मरुस्थल-सा रूखा, ज्वाला-मय, अ जीवन हो गया। वह अपनी पत्नी की प्रार्थनाएँ न मान सके। दो-चार महीने, उजडे मन से, घर में बसे देवताओं की उन्होंने पूजा की, मगर, फिर वह उन्हें ढोंग और भार मालूम पड़ने लगी। वह काम उन्होंने उस छोटी बच्ची के सिपुर्द किया। और स्वय शराब-सेवा पर उतारू हो गये।

आरम्भ में गम-गलत करने के नाम पर, एक एक दिन का नागा देकर, वह पीते और चुपचाप अपने एकान्त और पक्के श्मशान में पडे रहते। एक नौकर था, वह घर की सफाई करता, बरतन माँज देता और लडकी कची पक्की रसोई तैयार कर देती। उनकी लडकी अपनी माँ ही की तरह सीधी, सुन्दरी और मोहिनी थी। छोटी होने पर भी अपने पिता की परिस्थिति को वह समझने लगी थी। जब वह उदास रहते तब उसका मुँह भी कुम्हँला जाता। जब वह प्रसन्न रहते, चाहे शराब की झोंक ही में सही, तब वह फूली न समाती। वह खूब प्रेम से अपनी माँ की मूर्तियों की पूजा करती—विधि से उन्हें नहलाती, फूल चढाती, आरती उतारती, नैवेद्य लगाती और अन्त में पृथ्वी पर माथा रखकर धीरे-धीरे बुदबुदा कर न जाने क्या माँगन माँगती। कई दिन, यह जानने के विचार से कि वह

किस तरह देवताओं से व्यवहार करती है, पारस ने छिपकर उसकी वे भक्ति-भावनाएँ देखीं। वह अक्सर गद्‌गद हो जाते, बच्ची के सुकुमार भावों पर। उन्हें ऐसा लगता गोया उसकी स्वर्गीया माता ही लघु-रूप बना कर देवताओं के लिए और पारसनाथ के लिए पृथ्वी पर उतर आयी है।

"क्यों बेटी!" एक दिन छिपे छिपे अपनी पुत्री की देव-पूजा देखकर, भरकर, पारस ने पूछा—"तू माथा टेककर बुदबुदाती क्या है? तुझे चाहिए क्या? ब्याह और वर माँगती है?"

"नहीं बाबा," उन्होंने देखा बालिका छलक उठी, 'मैं ठाकुरजी से माँगन माँगती हूँ कि आप प्रसन्न रहें। आपकी उदासी दूर हो।"

"धत्, धत्!" उसे गोद में उठाकर चूमते हुए पारस ने कहा—"अभी से ही पुरखिन हो गयी!"

मालूम नहीं बालिका की प्रार्थना और तपों के वरदान से या उनकी स्वर्गवासिनी पत्नी के अभिशाप से पारसनाथ की प्रसन्नता बढ़ने लगी। मगर, शराब की हवागाड़ी पर चढ़कर। वह धीरे-धीरे पीते-पीते पियक्कड़ हो गये। फिर गली और कूचों में झाँकने भी लगे। इस तरह पत्नी की प्राय तीनों प्रार्थनाएँ उन्होंने ठुकरा दीं।

उनके पिता भी पीते थे, मगर तालियों का गुच्छा अपनी टेंट मे सँभालकर। उन्होंने अपनी आमदनी और पैतृक सम्पत्ति बढायी नहीं, पर नष्ट भी नहीं की। लेकिन यह बुद्धि पारस में कहाँ। उन्होंने चार वरस की ऐय्याशी और आराम में अपनी सारी सम्पत्ति, काश्तकारी जमीन्दारी, इस तरह नष्ट कर दी जैसे शराब बुद्धि को नष्ट करती है। अब उन्हें दिन-भर शराब, रात-भर शराब चाहिए तो, मगर पैसे नहीं रह गये। अब लड़की भी व्याह की अवस्था पर आ गयी—मगर पैसे नहीं। इतने पर भी उन्हें अपनी शराब अधिक प्यारी लगी, पुत्री के विवाह से। अबकी घर गिरों रखकर और जरा सावधान भाव से, साल भर उन्होंने और मजे किये। इन्हीं दिनों उन्होंने लड़की के व्याह को चेष्टाएँ भी कीं। इधर दौड़े, उधर दौड़े। कहीं नाई को भेजा, कहीं ब्राह्मण को। मगर वह चारों ओर वदनाम हो गये थे। उनके उजड़ने की खबर अखबारों में न छपकर भी उस प्रान्त में ख्यात हो गयी थी। पहले तो कोई प्रतिष्ठित ठाकुर उनके यहाँ सम्बन्ध करने पर राजी ही न होता, फिर, कोई होता भी तो यह कहते हुए कि—"आप तो फलाने के खानदान के हैं। आपसे इतने हजार रुपये तिलक में और इतने हजार दहेज में मिलने

चाहिएँ। आप ही सोचें, आपके व्याह मे आपके पिता ने कितना लिया था? इतने हजार, इतने सौ, कितने रुपये। लड़के के व्याह में जो खानदान जितना पाता है या लेता है लड़की के व्याह में उस खानदान को उतना देना भी पड़ता है।"

मगर, अब पारस के पास इतने रुपये थे कहाँ।

हीरा के पति का ज्ञान स्त्री-जाति के बारे में उतना ही था जितना हमारे समाज के निन्नानवे फी सदी लोगो को होता है। उसने समझ रखा था कि स्त्री खाना और कपड़ा के दामो पर, मुफ्त के माल की तरह लूट लेने की चीज है। स्त्रियों का केवल यही कर्त्तव्य है कि जिसके हाथों बिकें उसके लिए, उसके परिवार के लिए, उसके ससार के लिए, अपने तन के लहू की एक-एक बूँद गार दें। मीठा कर्त्तव्य समझ कर, मुस्कराती हुई।

वह मन-ही मन प्रत्येक व्याहे पुरुष को बादशाह समझता था और उसकी पत्नी को अनबोलती, मूर्खा, मोहिनी,

चेरी। बादशाह को यह अधिकार है—और वैध और ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है—कि, उस चेरी को अपने इच्छानुसार नाच नचावे। जी में आवे प्यार करे, या तिरस्कार। खुश रहे तो चारुमुखी माने, रूठे तो चाण्डालिनी। उसके देह-देश के जिस प्रान्त में चाहे, कर जाल पसार कर वहाँ का रस लूट ले। जब चाहे तब लूटे—जितना चाहे उतना लूटे। चेरी के मरने-जीने का विचार किये बिना।

और यदि चेरी कभी विद्रोह करे, आज्ञोल्लघन करे, बादशाह के विचारों से असहमत हो, तो, फौरन उसका शासन उस हाथ से किया जाय जिसे राजनीतिक पण्डित "फ़ौलादी हाथ" कहते हैं। वह मानता था कि पति का अपमान ही—चाहे जैसे भी हो—स्त्री के लिये मौत की सज़ा है। क्योंकि उसने सुन रखा था कि समाज-नीति के पिनलकोडों में यह लिखा है कि अन्धा हो, बहरा हो, कोढी हो, कदर्य हो, लपट हो, लुगेड़ा हो पर "ऐसेहु पति कर किय अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना।" स्त्री को वसुन्धरा की तरह निरीह बनी रहना चाहिए। ऐसी ही बनी रहने के लिए वह बनायी गयी हैं।

उसकी पहली स्त्री, उसकी भाभियों के मतानुसार, उसके "फौलादी हाथों" ही में पड़कर, बरबस, नाना दुख

पाने के लिए यमपुर चली गयी। वह बेचारी दुबली और पतली चमेली की कली-सी थी। हवा से उसको धक्का न लग जाय—उसे देखकर यह चिन्ता होती थी। उसे निहारने पर विचार होता गोया वह केवल देखने के लिए बनायी गयी थी, छूने या भोगने-ब्याहने के लिए नहीं।

मगर, उसको उसने दल-दल, मल-मल डाला। "पानी दे जा!" पुकार कर ग्यारह बजे जो वह कोहबर में घुसता तो सन्ध्या के पहले बाहर मुँह न दिखाता। वह गिलास भर-भरकर देती रहती। वह दानवों की तरह घट-घट करता रहता। पानी देती-देती वह खून खून हो जाती, मगर उसकी प्यास दून-दून हो दहकती रहती। देखते देखते वह पति के नाम से डरने लगी। जैसे पुण्यात्मा पाप से डरे। वह उसका अपमान नहीं कर सकती थी। उसमें अपने प्राणों की रक्षा के लिए दृढ विरोध करने की तीव्रता भी नहीं थी। परिणाम स्वरूप शीघ्र ही उसका स्वास्थ्य गिरने लगा और देखते-देखते ब्याह के दो वर्षों के भीतर ही उसके प्राणो का बाजार उठ गया। उसके कलेजे में फोडा हो गया था।

दूसरी स्त्री हीरा की फूल-सेज पर सोने के लिए, अपनी छोटी भाभी से नकली ना ना करता हुआ, वह उस कोठरी

में ठिल आया। साँकल बाहर से चढ़ गयी, हीरा के हिये की तरह मन्त्र से बोलकर। वह मन ही-मन महा मगन हो उठा। नयी चेरी या प्यारी या औरत या पत्नी से मिलने के लिए वह बेहद बेक़रार था। क्योंकि, पालकी में जिस परिपक्वता की झाँकी उसको मिली थी वह सहज ही भूलने की चीज़ नहीं थी।

उसने देखा, सेज सजी है और सेज की सजनी भी कम सजी नहीं है। उसकी देह पर बादामी रंग की सुकुमार सारी है, जिसमें गठरी की तरह लिपटकर पलंग के एक कोने में, वह पड़ी है। साँस उसकी ज़ोर-ज़ोर से चल रही है, यह भी उसने एक ही नज़र में ताड़ लिया।

पास जाकर उसने हीरा के फड़कते दाहने हाथ पर अपना हाथ रखकर दबाया—वह चमक पड़ी। जैसे आग छू कर बालक चमके। वह छटककर पलंग के पायताने जा पड़ी—और भी सिकुड़कर। पलँग पर चढ़कर दोनों बलिष्ट बाहुओं से उसने हीरा को उठाकर बैठा दिया। जैसे पहल-वान किसी छोकरे को पहुँचे पकड़कर ज़बरदस्ती अपने सामने बैठाये। मगर, घूँघट उसका लंबा था, गर्दन झुकी।

आगे खींचकर उसने उसका घूँघट खोला—पर, वाह! यह क्या! वह रो किसलिये रही है? हैं—हैं!

"रोती क्यों हो?" धीरे से उसने पूछा।

"मुझे जाने दो," धीरे ही से, मगर जी-जान से हीरा ने कहा—"मैं बहन के पास सोऊँगी। माँ के पास रहूँगी।"

"वाहरे!" भरपूर जोर से हीरा को छाती से छोप कर उसने कहा—"वाह रे!"

"अरी माँ!" वह इतनी जोर से चिल्लायी जैसे लड़के ने भूत देख लिया हो।

बाहर से स्त्री सुलभ किलकिलाहट सुनाई पड़ी। हीरा की छोटी जेठानी अभी थी दरवाजे के पास।

जेठानी बाहर खड़ी है यह अनुभव कर, मारे लाज के वह भीतर ही-भीतर गड़ गयी। एक बार उसकी बुद्धि पुनः जाग उठी। उसको अपने पूर्व विचारों से जरा फुर्सत मिली। वह पुन सोचने लगी कि अब वह वह हीरा नहीं जो रतनपुर की लड़की थी। वह बेचारी तो ब्याह होते ही मर गयी। यह नयी हीरा है—यह स्वाधीन नहीं, पराधीन है। यह अपने हृदय की स्वामिनी नहीं, दुनिया की सुप्रथा (!) की दासी है। अब तो यह उस व्यक्ति के हाथों जिसे रतनपुरवाली जरा भी नहीं चाह सकती, कर्म की रेख में बँधकर बिक गयी है। इसे विरोध का अधिकार कहाँ। ओह! माँ ने क्या बताया था? यही तो—यही तो!

वह चुप—स्तब्ध रही। उसका पति उसे सहलाता और प्यार करता रहा। वह वासना से पागल की तरह उसके साथ खेलता रहा और हीरा गुड़िया-सी निर्जीव, ठण्ढी, उसकी गोद में बैठी रही। जैसे समाधिस्थ योगिनी।

पारसनाथ के पैसे चुक गये, उनकी जवानी भी चुक गयी, पर पीने की हविस उनके दिल की न चुकी। उनकी लम्बी, बलिष्ट देह घुल गयी, गाल पिचक गये, छाती की हड्डियाँ बाहर झाँकने लगीं, पीठ की रीढ़ दो अंगुल ऊपर निकल आयी, आँखें गढे में धँस गयीं। उनका चमकता गोरा रंग, शराब की आँच में भुन कर, चिन्ताओं से झुलस कर, जल बुझे ताँबे सा हो गया। मगर, वह फिर भी पीते गये—पीते गये। वह करते ही क्या, यह कौन नहीं जानता कि मुँह की लगी हुई मदिरा नाम्नी यह काली जोंक कभी छूटती ही नहीं।

जब सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी, मकान भी गिरों हो गया, तब वह घर के बसन-बासन पर उतरे। जहाँ देखते

कि लडकी इधर या उधर गयी है, फ़ौरन् फूल का बड़ा लोटा, या दससेरी बटुआ अथवा तामें का हण्डा उठा भागते। सीधे कलवरिया मे जाते और उस बरतन के बदले में जितनी घूँट शराब की पा सकते—ले पीते। इसके बाद जब उनकी लड़की इस या उस चीज़ के खो जाने की चर्चा उनसे करती तब वह अर्द्ध उन्मत्त भाव से उत्तर देते—"कुत्ता उठा ले गया होगा, बेटी।"

"कुत्ता क्या तामेंवाला बडा हण्डा उठा ले जायगा, जिसे मैं नहीं उठा सकती थी?" वह पूछती।

"हाँ बेटी!" वह उत्तर देते—"बुरे दिन जब आते हैं, तब ऐसा ही होता है। तूने सुना नहीं—भा बिधना प्रतिकूल ज्वै, तब ऊँट चढे पर कूकुर काटे!"

कलवरिया के कलाल से पारस की जान पहचान ही नहीं, मित्रता भी थी। पहले तो वह बन्द बोतलवाली पीते रहे, मगर जब से पैसे घटे तब से कलवरिया प्रेम उनका बढ गया। पहले वह दस दस दोस्तो के साथ, नवाबी दस्तरख़ान सजा कर बैठते, कोर्मा होता, कलिया होती, पुलाव-दोप्याज़े की तश्तरियाँ होतीं और रात रात भर बोतल के काग फटा फट खुलते रहते। उन सामानो के सामने पारसनाथ के दोस्त ऐसे दिलदार दिखाई पड़ते गोया कृष्ण और

अर्जुन के जमाने के मित्र हों। पर ज्यों ज्यों पारस का रूप बिगड़ता गया, त्यों त्यों—दस्तरख़ान के सामान के साथ-साथ,—दोस्त भी कम होते गये।

जब वह घर बेच कर कलवरिया की ड्योढी नापने लगे तब तो उनके उन्हीं दोस्तों ने उनसे घृणा करनी आरम्भ कर दिया। वह इधर या उधर लोगों से उनकी शिकायत करते फिरते—छि! ऐसा भी आदमी! महीनों उसके साथ रहकर हमने हजार समझाया कि अरे पागल यह शराब है—खराबी की माँ। इसे गले न लगा, नहीं तो उजड़ जायगा। मगर, वह तो नशे के पीछे वेहया हो गया है। पन्द्रह बरस की उसकी लड़की हुई। किसी भले घर में होती तो अब तक एक दो बच्चों की माँ हुई होती, मगर, इसे फिकर नहीं।

जब तक पारस दावतें दे सकते थे, तब तक ऐसा कुछ नियम था कि दस दावतें खा लेने के बाद उनका कोई न-कोई दोस्त उन्हें अपने घर पर भी दारू दावत देता। पर, अब दोस्तों के यहाँ जलसे होते लेकिन उन्हें कोई न पूछता। दोस्त अब उन्हें देखकर इस तरह रुख़ बचाते, आँखें फेर लेते, जैसे कोई अध शरीफ़ शौकीन आम रास्ते में अपनी किसी पुरानी वेश्या या रखेली को देखकर आँखें चुराये।

ऐसे वक्तों पर वह आह खींच कर, लहू घूँट कर, रह जाते।

मगर, उनकी उन आहो का जीवन क्षणिक से जरा भी अधिक न होता। चार गज आगे बढ़ते ही दोस्तो की बेवफाई भूल जाती और मजे के गुजरे दिन याद आ जाते। वह पुरानी शराबो और दावतो के लिये मन-ही मन पागल हो उठते। और तुरन्त कलवरिया में जा पहुँचते। कलाल से कहते, वह उन्हे पीने दे, बदले में कोई बरतन या गहना उसको वह दे जायँगे, मौका पाते ही। कलाल उन्हे देता और वह चार चने के चखने पर, दोस्तो और दावतो और दस्तरखानो की खूबियों को भूल, कडी, देशी, दारू पीते हैं।

दिन-दिन भर प्राय वह घर से गायब रहते। क्योकि घर में पाँव धरते ही उनका सारा नशा हिरन हो जाता। उन्हे अपनी पूर्व प्रतिष्ठा और विभूतियाँ याद आ जातीं। उनकी आँखो के आगे उनका वर्त्तमान और भविष्य भयानक रूप बनाकर थिरकने लगता—जैसे श्मशान में प्रेत। वह सबसे अधिक अपनी लडकी के बारे में सोचते। मगर, उनमें चरित्र बल नहीं था। बुराई को बुराई समझते हुए भी जो व्यक्ति उससे तोबा नहीं करता वह धीरे-धीरे देहाती, चोर कुत्ते-सा हो जाता है, जिसे ढाई ढाई पग पर अपनी दुर्दशाएँ भूल जाती हैं। जो लात और डण्डे खाता है, मगर, पुनः

तुरन्त ही, मौका पाने पर किसी के घर में घुसकर कुछ सूँघने साँघने लगता है। फिर अपमानित होता है, फिर वही काम करता है।

एक बार वह पीये हुए, लड़खड़ाते चले आ रहे थे। शाम का वक्त था। मुहल्ले के लोग अपने-अपने दरवाजे पर बैठे गप शप कर रहे थे। उन्हें देखकर उन्होंने बातें बन्द कर दीं—मारे घृणा के।

"नाश हो इस शराब का।" एक बूढ़े ने कहा।

"मुँहजले ऐसे शराबियों का जो अपने खानदान की और जात की इज्जत ताक पर रखकर कुत्ते का मूत पीते हैं।"

नशे में तो थे ही पारसनाथ। उनका दिल तो अपने से, पराये से, मुशीगज और दुनिया से कुढ़ा था ही। मुहल्ले वालो की बातें तीर सी उनके कलेजे में चुभकर रह गयीं।

"ऐ, ऐ शराफत के ठेकेदारो।" उन्होंने एक ही भाव में सबको तौला—"मैं किसी के बाप का नहीं पीता और न किसी के बाप की इज्जत खराब करता हूँ। खबरदार अब से बाद मेरे सामने ऐसे ताने न देना। नहीं तो ठीक न होगा। हूँ।"

"जाओ, जाओ।" एक बूढ़े ने कहा—"यह तान उसको दिखाओ जो तुम्हें जानता न हो। ठीक हो या न हो, जो

कहने लायक बात होती है, दुनिया कहती है। तुम्हें तो—बाबू साहब!—डूब मरना चाहिये। पठिया-सी जवान बेटी तुम्हारे नाम को घर में बैठी रो रही है। उसकी आबरू कच्चे धागे में लटक रही है और तुम डींग की लेते हो। छि—शरम भी नहीं मालूम पड़ती।"

"शरम कैसी—शरम कैसी!" बुड्ढे की ओर झपटते हुए उत्तेजित पारसनाथ ने कहा "किसी के घर पर डाका डाला है? किसी की बहू बेटी उढार लाया हूँ? मैं कह रहा हूँ।" तड़, तड़ तीन तमाचे उस वृद्ध के रूखे मुँह पर दुर्गन्धित पारस ने जमाये—"मैं कह रहा हूँ, मेरे मुँह न आया करो—हाँ!"

इस पर मुहल्ले के सभी पारस के विरुद्ध हो गये। देखते-देखते हगामा मच गया। बूढे के जवान लड़के घर से निकल आये। ले—दे की ठन गयी।

"साले!" लड़कों ने पारस को गालियाँ दीं—"दिन दिन भर सारे गाँव के हवाले अपनी जवान छोकरी को छोड़कर कलवरिया में पड़ा रहेगा। गाँव के आवारे मुहल्ले में आकर इसके दरवाजे पर चक्कर काटेंगे, इसकी लड़की से बोली-ठोली बोलेंगे, मुहल्ले को बाजार बनावेंगे और इस पर कोई कुछ कहेगा तो यह कुत्ते की तरह काटेगा। होश में रहा

करो बच्चू, नहीं तो एक दिन मारते मारते तुम्हारी आदत छुड़ा दी जायगी।"

बूढ़े के लड़कों ने पारसनाथ की अच्छी खबर ली। कई तमाचे, कई घूँसे, कई लात जमाये। वह तो मुहल्लेवालों ने बाद में छुड़ा दिया। नहीं तो क्या जाने क्या हो जाता। पारसनाथ भी क्रोध से पागल थे।

वह मुहल्ले में पिट कर घर आये। उनकी लड़की रसोई में बैठी गीली लकड़ियाँ और उपलों से उलझ रही थी। फूँकते फूँकते उसकी आँखें लाल हो गयी थीं पर वे बलने का नाम नहीं लेते थे।

आहट पाकर उसने रसोई के बाहर झाँक कर देखा— पिता थे। बाल बिखरे, आँखें चढ़ी, मानों खून किये आ रहे हैं। वह चूल्हा छोड़ कर उनके सामने आ खड़ी हुई।

"रसोई घर में क्या कर रही थी?" गुर्रा कर पारस ने उससे पूछा।

"दाल और रोटी बना रही हूँ।"

"आटा कहाँ मिला? दाल कहाँ से आयी? घर में तो फूटी कौड़ी भी नहीं थी। सामान तो कल ही से चुका हुआ है।"

"राजन की माँ से दस सेर गेहूँ मैंने माँग कर उनके

लिये दिन भर में पीस दिया था। बदले में आज भर को आटा और दाल ।"

"पाजी पाजी!" पारसनाथ बिगडे—"तू महल्ले में मेरी इज्जत बेचा करती है? लोगों के घर अब तू पिसौनी करेगी? चुपचाप घर में बैठा नहीं गया। मेरे मुँह में कालिख पोतती है?"

लड़की सन्नाटे में आ गयी। हजार नशे की हालत में होने पर भी पारस उस पर इस तरह नहीं बिगड़ते थे। उन्होंने तो उसे कभी एक कच्ची बात भी नहीं कही। मामला क्या है?

"बाबूजी ।" चाह कर भी वह कुछ न बोल सकी।

"चुप!" वह रसोई-घर में घुस गये। दाल की गरम बटलोही उठा कर उन्होंने उसे चूल्हे में उलट दी। रोटी के लिये गूँथे आटे को लात से रौंद-गौंद डाला। "मैं ऐसी रोटी खाऊँगा? अब मैं इतना गिर गया हूँ?"

वह फिर लड़की के सामने आये। वह सर झुकाये दीवार से लगी टपाटप आँसू बहा रही थी। हाथ लगाकर उन्होंने उसका मुँह ऊपर उठाया—

"मेरी ओर देख! जब मैं घर में नहीं रहता तब कौन यहाँ आता है? कौन आता है—कौन आता है?"

लड़की का स्वर्ण मुख अभागे पारस के स्पर्श से कोयला—काला हो गया। मालूम नहीं भय से या लज्जा से। वह कुछ कह न सकी। चुप रही और रोती रही।

"बोलती नहीं—अरी कलमुहीं बोलती क्यों नहीं?" तड़ातड़ वह उस बेचारी का मुँह पीटने लगे—"आज मैं तेरी जान लेकर अपनी दे दूँगा।"

"कुन्दन"—उस दूकानदार ने पूछा जिसके यहाँ वह सुबह सुबह दस दस के नोट लेकर पहुँची—"आज तो ख़ास रंग नज़र आ रहा है। तड़के ही बीस के ही नोट तुम्हें कौन दे गया? कोई नया चड्डल, या पुराना चपरगट्टू?"

"तुमसे वास्ता," कुन्दन ने अपनी बुढ़ौती में चमककर ताने से उत्तर दिया—"तुमने तो कभी कुन्दन को फूटी कौड़ी भी नहीं दी। चलो, ज़रा जल्दी करो। जैसा मैंने कहा, एक जोड़ी मख़मली पाढ़ की बढ़िया ज़नानी धोती निकाल दो। किनारा ज़रा चौड़ा हो और काला।"

"ओ हो!" दूकान की ताली लेकर दो-छत्ती के नीचे

उतरता हुआ दूकानदार बोला—"इस उम्र में मखमली पाढ पहनोगी ! क़सम ख़ुदा की ! कुन्दन, तुम अपने इसी दिल की वजह से तबाह हो गयी हो। वैसे तो पैसा पैसा को परीशाना रहती हो। लेकिन आज कहीं से कुछ मिल गया तो मख़मली पाढ ही चाहिये कुन्दन बी को !"

"अरे मुझे नहीं चाहिये, भले मानस !" कुन्दन ने समझाया उसे—"मेरे पास अब इतने पैसे कहाँ। मुझे तो, जब तक जीती हूँ तब तक, रूखी रोटी और मरने पर मोटिया का कफ़न मिल जाय तो समझूँ वैकुण्ठ मिल गया। मेरे तन पर यह जो फटी और मैली बिनकिनारी सारी देख रहे हो वही बहुत है, और मुझे बहुत प्यारी है। ये धोतियाँ मेरे एक मिहमान की हैं।"

"मिहमान—ज़नानी धोतियाँ ! ख़ैरियत तो है कुन्दन ?"

"मेरी मौसी की बेटी आयी है। देहात की रहनेवाली, उसके पास ऐसे कपड़े कहाँ जिन्हें पहन कर वह शहर का सामना कर सके। इसीसे आते ही पहले धोती की माँग हुई !"

कपड़े की दूकान उसी गली में थी, जिसमें कुन्दन का मकान था। दूकानदार कुन्दन को एक जमाने से जानता था। उसने उसके उत्थान का उत्सव देखा था और उस नाटक पर

पतन का परदा पड़ते भी। यद्यपि वह उसकी कोई मदद नहीं करता था, फिर भी, उसके प्रति उसके दिल में अन-जान सहानुभूति छिपी थी। शायद कुन्दन के उत्कट उत्थान-पतन मय जीवन के कारण।

"देखो!" बढ़िया-बढ़िया धोतियाँ उसके सामने रखते हुए दूकानदार ने कहा—"तुम्हारी मौसी ने अपनी बेटी को तुम्हारी मदद के लिये भेजा है क्या कुन्दन?"

कुन्दन ने सुन कर भी उक्त प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया। वह धोतियाँ जाँचती रही।

"ज़रा और अच्छी दिखाओ!" वह अपने मतलब की बोली—"ये कुछ मोटी हैं। इनमें मुलामियत भी खूब नहीं। इनमें से एक भी उसके तन लायक नहीं है।"

"भला!" दूसरी धोतियाँ ढूँढते हुए दूकानदार ने कहा—"बड़ी खूबसूरत है वह क्या? बैठेगी?"

"दे, भली तुम्हारी ज़बान!" इस बार वह बोली—"वह क्या वैसी है। गृहस्थिन है वह। उसका 'आदमी' है।"

"तुम्हारे ही आदमी-सा उसका आदमी भी है, क्या कुन्दन? सच बताना।"

"मेरा आदमी कौन मुर्झौंसा है—मैं उसका मुँह फूँक दूँ।"

"वही तुम्हारा जवान पाजट, जिसने बुढ़ौती में तुम्हारी

तक़दीर की उलटे छुरे से हजामत बना दी। भूल गयी उस गुलरू—को ?"

कुन्दन की छाती में उस विश्वास-घाती युवक का चित्र एक बार ऐसे खिंच गया जैसे नश्तर की रेखा। इस तरह मुँह बना कर वह उस बात को पी गयी जैसे कोई नीम का काढ़ा पिये। आखिर, एक जोडी धोती पसन्द कर, पैसे चुका कर, वह चलने को तैयार हुई।

"जरा मुझको भी," उसको जाते देख दूकानदार ने अन्तिम मजाक किया "अपनी मौसी की लडकी को दिखाओगी कुन्दन ? कोई डरने की बात नहीं। मैं उसको उस तरह नहीं लूट लूँगा जैसे तुमको तुम्हारा 'आदमी' लूट गया था।"

"आना—शाम को।" कह कर वह दूकान से बाहर आयी। उसने कई दिन के खाने के लिये चीजें खरीदीं, एक कघी, आइना और तेल लिया। फिर लौटी।

जवाहर तब तक सो उठी थी। नहाने निबटने के बाद जब कुन्दन रसोई बनाने और वह उसकी मदद करने बैठी तब उसने कुन्दन से पूछा—

"अगर, मैं तुम्हारे साथ रहूँ तो मुझको क्या करना होगा ?"

"करना क्या होगा," ममता दिखाती हुई वह बोली—

"तुम्हें रानी की तरह इस गली पर राज करना होगा। अब तुम रानी बनोगी। क़सम है जो इसमें झूठ हो। मैं तुम्हें गाना और नाचना दो महीने में ऐसा सिखा दूँगी कि तुम्हारा जोड़ न मिले।"

जवाहर हिचकी एक बार। उसके चेहरे का गोरा रङ्ग न जाने किस विचार से ज़रा गाढ़ा हो उठा। कुन्दन इस बात को ताड़ गयी।

"घबराओ मत।" उसने दिलासा दिया "तुम शाम को थोड़ी देर ऊपर की खिड़की पर, सड़क की ओर मुँह किये बैठा करो और मुझसे गाना नाचना सीखा करो। दूसरा कोई काम चाहे न करना। 'वैसे कामों' से मुझे भी घृणा हो गयी है। मेरा तो यह तजरबा है कि, अच्छी नाचने-गानेवाली हो, तो, उसके लिये यह जरूरी नहीं है कि 'दूसरा काम' भी करे। वैसा काम तो कमज़ोर गानेवालियों का आख़िरी हथियार है। हाँ, तुम्हें कोई गीत याद है? देहाती ही सही। ज़रा धीरे से गाओ। देखूँ तुम्हारा गला कैसा है। सकोच न करो बेटी, गाना-नाचना तो श्रीकृष्ण भगवान् की प्यारी कला है। नाद और नृत्य विद्या के आदि देव शंकर महादेव हैं। मेरी परदादी चंपाकली बेगम बिना शिव को पूजे दाना तक नहीं छूती थी। हाँ—गाओ।"

धीरे से, मगर, बाँसुरी की तरह, जवाहर बज उठी—

"लगो स्याम कर-पीठ दही, री !"

वाह ! कैसा मीठा स्वर, कैसा मोहक कण्ठ ! कुन्दन तो हाथ में चिमटा लिये, अगारे पर सिंकती हुई रोटी को उलटना भूल, उसका मुँह ताकती रह गयी।

"यह तो सूरदास का पद है, बेटी !"

"हाँ," लंबी साँस खींचकर जवाहर ने उत्तर दिया—"मेरी माँ ठाकुरजी की भक्त थीं। उन्हे 'विनय' और 'सूर-सागर' के कोड़ियों पद याद थे। मुझे भी याद हैं।"

शाम से पहले उसने जवाहर को तेल और उबटन से मल-मलकर साफ किया। सर के बालों को धोकर, चिकना कर, सजाकर ठीक किया। साथ ही वह समझाती रही उसको। डरने की कोई बात नहीं। मैं जानती हूँ, तुम भली बेटी हो। बेटी की तरह मैं तुम्हारे दिल का और सुखों का ध्यान रखूँगी। तुम्हे मेरे कहने के मुताबिक चलना भर होगा। क्या मजाल जो कोई मुआ तुम्हारी ओर बुरी नीयत से ताके। मैं उसकी आँखें न निकाल लूँगी। तुम केवल गाना और नाचना सीख लो और फिर देखो मैं सारे रतनपुर को किस तरह अँगुलियों पर नचाती हूँ। हाँ।

दिया लगते ही वह गली दीपावली की तरह चमकने

लगी। वासना के साधनों में कितना आकर्षण, कितनी चमक होती है! कुन्दन ने भी जवाहर को मखमली किनारे की नयी धोती, सुरमई रँग में रँगकर, पहना दी। ओह! उस मामूली परिधान में वह युवती ऐसी खिलने लगी जैसे विष्णु-कान्ता लता के फूलों के गुलदस्ते में चपा का पुष्प। उसको खिरकी पर बैठाने के पूर्व बायीं हथेली पर चनक-सी रोली गोली कर, बिचली अँगुली से उसने जवाहर के मस्तक के मध्य में ज़रा छू दिया। ओह! उतने ही से उसका रूप इस तरह दमदमा उठा जैसे बिजली का बटन छूने से "बल्ब" बले!

मानिकलाल

मानसिक द्वन्द्व में पड़कर अपने जिगरी दोस्तों को भूल-सा गया, पर उसके दोस्त न भूल सके उसको। जब वे दो चार की संख्या में कहीं एकत्र होते, खेल-कूद या सैर-सपाटे में, तब वह उन्हें बहुत याद आता। वे अपने ऐसे दिलदार यार के असमय वैराग्य की रोज़ ही चर्चा करते। आपस में पूछताछ करते कि कारण क्या है

जो इस साल वह ऐसा एकान्तवासी और नीरस हो गया है। मगर, किसी को उसकी तबदीली की वजह नहीं मालूम थी।

स्कूल की पढाई और परीक्षा समाप्त हो गयी थी। इस बार मानिक फेल हो गया था। ऐसा नहीं था कि वह परीक्षा देने बैठा ही नहीं। उन दिनों वह आता रहा, परीक्षा स्थान पर बैठता रहा, किसी किसी परीक्षा-पत्र को उसने कुछ-कुछ लिखा भी, पर व्यर्थ, वह पास न हो सका। आधे से अधिक परीक्षा पत्रों को तो उसने छुआ तक नहीं। वह उन्हें हाथ में लिये अपने स्थान पर बैठा रहता और शून्य दृष्टि से कभी इधर कभी उधर देखता रहता। परीक्षा-निरीक्षक अध्यापक उसके पास जाते, देखते वह लिख नहीं रहा है। पूछते—क्यों? वह उचटे स्वर में उत्तर देता—जी अच्छा नहीं है। मचली आ रही है, सर में दर्द है। और इसके बाद परचा और कापी जहाँ का तहाँ छोड़ उठ भागता। ऐसी दशा में वह फेल न होता तो और क्या होता?

गर्मियों की छुट्टी स्कूल में हो गई थी। रतनपुर के सारे विद्यार्थी दो महीने के लिये ज्ञान के कारागार—स्कूल—से मुक्ति पाये हुए थे। इन दिनों उनके अज्ञान को मानिकलाल की सख्त जरूरत हुई। उसके अभाव में उनकी छोटी-छोटी

महफ़िलें सूनी मालूम पड़तीं। न तो उसके ऐसा दिलदार उनका कोई साथी था, न हँसनेवाला, न हँसानेवाला। आख़िर उसके मित्रों ने एक दिन किसी न-किसी तरह उसको पकड़ फाँसने का इरादा पक्का किया। किसी से उन्हें पता चल गया था कि, आजकल वह अक्सर नीली नदी नारायणी के किनारे अकेला घूमता या गाता या चुपचाप बैठा रहता है। बस, उन्होंने एक दिन उसे वहीं गिरफ्तार करने का विचार पक्का किया।

रविवार का दिन, सन्ध्या का समय था। नारायणी के करारे वाले पोपल के पास, पत्थर पर, मानिकलाल बैठा, आँखें गड़ा कर नारायणी की नीलिमा को घूर रहा था। न-जाने क्या सोचता हुआ। उसी दिन, वहीं, आधे दर्जन युवक प्रेमियों ने उसको घेरा। चुपके से, पीछे से जाकर, एक ने उसकी आँखें मूँद लीं। उसके स्पर्श से वह जागा अपने विचारों की तन्द्रा से। "अरे, अरे, हीरा!" उसने सिहर कर कहा, मगर तुरन्त सावधान हो गया अपनी गलती समझकर। हीरा वहाँ कैसे आ सकती थी। वह तो रामपुर में थी।

उसके दोस्त ठठाकर हँसने लगे। किसी को न देखकर भी वह उनकी हँसी से ताड़ गया उन्हें। "तुम गोपाल हो,"

उसने कहा—"खोल दो आँखें, मैं तुम्हें पहचान गया।" मगर, दोस्त हँसते रहे। एक ने बढकर उसके हाथ में अपना हाथ देकर कहा—"गोपाल मैं हूँ, मानिक, और मेरे हाथ यहाँ हैं। मैंने तुम्हारी आँखें नहीं मूँदी हैं। वह तो हीरा है।"

गोपाल ने "हीरा" नाम का एक ऐसा मार्मिक और सामयिक प्रयोग किया कि मन ही-मन मानिक सिहर उठा और उसके मित्र नये जोश से ठठा पडे। मानिक ने सोचा—ओह! वह कैसा पागल है, अज्ञान में किनके आगे उसने किसका भेद खोल दिया।

अन्त में झटके से उसने आँख मूँदनेवाले के हाथों से मुक्ति प्राप्त की। मित्र उसको, घेर कर खड़े हो गये। एक उसकी दाहनी ओर भिड कर बैठ गया, दूसरा बायीं ओर, गले में हाथ डालकर। उसके कपोल से कपोल सटा कर—

"क्यों रे, क्यों रे! आजकल तू साधू हुआ जा रहा है? नारायणी के किनारे बैठकर जोग साधता है?"

मानिक चुप रहा।

"चल!" दूसरे मित्र ने कहा—"मेरे घर पर आज तेरी दावत है। हम समझ गये हैं तेरे गायब रहने का

कारण। तू भुक्खड़ जो है। इम्तिहान की वजह से इधर हमने जो दावतें तुझे नहीं दीं इसी से तू भागा भागा फिरता है।"

"हीरा कौन है मानिक!" तीसरे ने पूछा—"नाम तो यह खासा चमकीला है। लड़का है या लड़की?"

बातें बनाकर मानिक ने उत्तर दिया—"मेरे नये नौकर का नाम हीरा है।"

"हा हा हा हा!" सब हँस पड़े—"हमें बच्चू चरका देने चले हो? हीरा नौकर का नाम है? अब आपके नौकरों की ऐसी हिम्मत हो गई कि आपसे आँखमिचौनी खेलें। अरे पागल, झूठ ही कहना था तो कोई प्रतिभा पूर्ण झूठ ढूँढते।"

खैर वहाँ से उसको सब गोपाल के घर पर पकड़ लाये। गोपाल रतनपुर के एक नामी वकील का पुत्र था। उसी के घर पर आज दावत की तैयारी की गयी थी। रास्ते में उसने उसको बताया कि यद्यपि वह फेल हो गया है, फिर भी, जो पास हुए हैं उनकी ओर से आज दावत है। उसमें मानिक को जरूर ही शामिल होना होगा।

पहले तो वह बचने की कोशिशें करता रहा, पर जब उसे सफलता न मिली, तब उसने पूछा गोपाल से कि पास होने की खुशी में वह क्या खिलावेगा?

"मलाई की तरकारी—चटपटी !" गोपाल ने मजाकन कहा—"खाई है तुमने कभी ?"

"नहीं तो भाई !"

"गुड़ की कलौंजी। खाई है कभी ?"

मानिक ने हल्का सा धक्का दिया गोपाल को—"पाजी, बात-बात में दिल्लगी !"

"क्यों इसमें दिल्लगी की क्या बात है ?" गोपाल ने पूछा—"रईसों की दावतों में यही तो खासियत होती है। जिस चीज का किसी ने कभी नाम भी न सुना हो वही वह परोसते हैं। गेहूँ का अँचार, बैगन की खीर, चावल की चटनी, बाँस का मुरब्बा, यही तो अमीरी दावतों की शोभा है।"

"मगर," एक ने कहा—"मैं तो कन्दाहारी नहीं हूँ जनाब। मुझे तो आप मुर्गमुसल्लम न खिलाइयेगा तो मैं भाग खड़ा होऊँगा।"

दोस्त की बैठक में पहुँच कर मानिक ने देखा अंग्रेजी ढग से "डिनर टेबुल" सजा था। उसपर ताजी धुली सुफ़ेद चादर बिछी थी। बीच में बड़ा सा फूलदान—शीशे का—था जिसमें ताजे विलायती फूल महँक रहे थे। उसकी दोनों ओर दो बड़े बड़े बेलजियम के कट ग्लास के "जार" थे

जिनमें साफ़ किये हुए अंगूर, कटे हुए सेव और नासपाती किसी सुफ़ेद चीज़ में भिगोये रखे थे।

"इन जारों मे क्या है ?" मानिक ने गोपाल से पूछा।

"नये ढंग से फल भिगोकर रखे गये हैं। यह तरकीब मैंने कलकत्ता के ग्रैण्ड होटल से सीखी है। इस तरह भिगोने से फलों में एक खास मजा आ जाता है। जल में अजीब ज़ायका, पैदा हो जाता है। जरा पीकर देखो।"

"खाने के साथ पियेंगे।" लापर्वाही से मानिक ने कहा।

"नहीं," एक दूसरे मित्र ने कहा—"यह चीज खाना शुरू करने के पहले ही पी जाती है। इसे अंग्रेज लोग 'एपी-टाइज़र' कहते हैं। इससे भूख जागती है।"

इसी समय गोपाल का नौकर आया। उसने सात साफ़ गिलासों में दो-दो चार-चार टुकड़े फलों के और आधा-आधा गिलास वह सुफ़ेद जल ढाल दिया। यार लोग अपने-अपने आसन पर जमकर पीने लगे।

"इसमें तेजी कैसी है ? यह पानी तो नहीं मालूम पड़ता।"

दोस्त हँसे। एक ने कहा—"यह पानी नहीं है मानिक, इसका नाम हीरा है।"

"सच बताओ,"मानिक ने पूछा—"यह है क्या ?"

"फलों का शर्बत," गोपाल ने कहा—"थोड़ी देर तक

भिगोये रहने से फलों का रस जल में उतर आता है। इसमें जो तेजी है वह अगूर की है।"

"नशा भी होता है इसमें ?" गिलास खाली कर फलों को चखते हुए मानिक ने पूछा।

"नहीं," गोपाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया "हम लोग कुछ पियक्कड़ तो हैं नहीं।"

मगर, भोजन आरम्भ होते-होते मानिक की नसों में हलकी-सी मस्ती दौड़ने लगी। करीब करीब वैसी ही मस्ती जैसी हीरा को देखने के वक्त उसकी नसों में फिरने लगती थी। उसे बड़ा आनन्द मिला उस शर्बत से। उसने फिर ढालकर पान किया—और फिर। भोजन समाप्त होते होते वह झूमने लगा।

"इसमें शराब थी गोपाल—थी न ?" उसने पूछा—"हा हा इसमें नशा है।"

"यह नशा नहीं, हीरा है मानिक,—अच्छा सच बताओ यह हीरा कौन है ?"

"मत पूछो !" अब वह खुल पड़ा—"वह मेरी सखी है। आह ! मैं उसको इतना प्यार करता हूँ—ऐसा चाहता हूँ—जैसे कोई अपनी जान को चाहे।"

"ओहो !" दोस्त हँसे—"अब थाह लगी। इसी हीरा

के लिये आपने हम लोगों को भुला दिया है। अच्छा यार, कहाँ रहती है वह?"

"वह—वह!" मानिक की जबान लड़खड़ानेलगी—"वह मेरी पड़ोसिन है। आह!—है कहाँ अब? थी।"

"याने?" आधे दर्जन मुखों से एक ही प्रश्न हुआ।

"अब वह अपनी ससुराल चली गयी है। चार महीने हुए उसका गौना हुए।"

"आह! तो आजकल आप हिज्र की घड़ियाँ गिन रहे हैं। तभी नारायणी का तट ऐसा प्यारा हो गया है। वह कैसी है मानिक? अरे यार, बड़े मतलबी निकले तुम। हमें कभी दिखाया नहीं उसको।"

"नारायणी के तट पर सूर्यास्त के समय जैसी सुन्दरी गोधूली मालूम पड़ती है, हीरा उससे भी बढ़ी थी। ओह! मैं उसको भूल नहीं सकता।"

"अरे यार ऐसी थी वह!" गोपाल ने कहा—"इस बार आवे तो हमें भी दिखाना। और यह तो बताओ कि इस प्रेम में कुछ आगे भी बढ़े या आह ही खींचते रह गये?"

मानिक एक आह खींचकर चुप रह गया। अपने पास के मित्र की कुर्सी पर उठँग कर उसने आँखें मूँद लीं।

यार लोग कोलाहल की तरह हँसने लगे।

जवाहर को बाजार ने देखा। सोने-सा मुँह था, नीलम सी आँखें, मूँगे से ओष्ठ और माथे की वह अनुराग मयी बिन्दी लाल सी। खिरकी पर, एक ओर जरा उठँग कर, आँखें झुकाये वह इस तरह बैठी थी मानों छवि की मूर्ति थककर दम ले रही है। जिसने उसे एक बार देखा, वह देखता ही रह गया।

एक अधेड मियाँ महोदय ने उसकी ओर ताककर, आँखों से लालसा का विज्ञापन करते हुए जोर से कहा—आह! "सरेशाम उसने मुँह से जो रुखे नकाव उलटा, न गरूब होने पाया, वहीं आफताब उलटा।"

उनके पास ही कोई छरहरा सा जवान खड़ा था। उसके मुँह पर अभी भरपूर मूँछें भी नहीं निकली थीं, मगर देखने से वह असमय वृद्ध-सा, अफियूनी-सा या कोकीनखोर-सा मालूम पड़ता था। मियाँजी का शेर सुनकर उससे भी न रहा गया।

"जो फिराके उसने मुँह को," उसने कहा "बकजा नक़ाब उलटा। इधर आसमान उलटा, उधर आफ़ताब उलटा।"

वाह-वाह की धूम मच गयी। प्राय उसी तरह जैसे कम-समझ दाद देनेवाले मुशायरों में वाहवाही लगते हैं। कुन्दन के मकान के सामने भीड सी लग गयी। जिसे देखो वही खिरकी की ओर ताक रहा है और आँखें मलमल कर निहार रहा है। मानों उन्हें अपने देखने पर विश्वास नहीं हो रहा था। मानों वे नजरों को अधिक से-अधिक पारदर्शी बना कर उस लड़की की तस्वीर को आँखों के "कमरे" और पुतलियों के "लेन्स" से दिल के "प्लेट" पर खींच लेना चाहते थे। अजीब हालत थी उस समय उस गली की जिसमे घुसकर समाज के लोग एक बार अपने को सात्विक, धार्मिक और उस मशहूर चारित्रिक वन्धनों से मुक्त समझते हैं। जिस पर मुग्ध होकर लोग एक बार शरीर और शरीर के आरामों विलासों के साधनों ही को सब कुछ समझने लगते हैं। वह भगवान को भी भूल जाते हैं जिनकी एक भृकुटि-विलास से ब्रह्माण्डों तक के शरीर गलित पलित हो जाते हैं। और बहुधा यह सब जानते और मानते हुए। क्योंकि, भगवान के प्यारे इस देश में उनके जाननेवालों की जमात-की जमात भरी है।

थोड़ी ही देर में कुन्दन के अँधेरे दरवाजे पर उजले कपड़ेवालों की थपकियाँ थिरकने लगीं। वह तो ऐसे भले

मानसों ही के इन्तजार में बेजार बैठी थी। चट-से दरवाजा खोल बाहर आई—

"अहे किस्मत! लाइये तशरीफ़!"

भीतर जाकर पूछा एक सज्जन ने—

"वह कौन है?"

सज्जन तीन थे। एक के उक्त सवाल पर दूसरे ने रोका उसे—

"यहीं से पूछताछ कैसी? ऊपर चलिये, आराम से बैठिये और जिनके बारे में जानना है उन्हीं से पूछिये।"

"जी हाँ" कुन्दन ने भी समर्थन किया—"ऊपर आइये।"

उधर जवाहर के कानों में ज्योंही लोगों के पैरों की धम-धमाहट पड़ी त्योंही वह खिड़की से उठ खड़ी हुई और जल्दी से बगलवाली कोठरी में जा घुसी। एक तरह से उस रूप में समाज में आने का उसके लिए वह पहला ही दिन था। उसकी छाती धड़कने लगी, दम घुटने लगा। ऐसा होने लगा उसके जी में कि वह कहाँ भाग जाय कि इस बाज़ार की इन आँखों से बचे।

कोठरी में जाकर वह एक कोने में दीवार से टिककर खड़ी हो गयी और सोचने लगी। सोचने लगी कि वह किस ऊँचे खानदान की बेटी है, उसके दादा और परदादा

कैसे प्रतिष्ठित थे। उसके गाँव में उसकी कैसी इज्जत थी। और आज उसी घर की वह अभागिनी 'ऐसे करम' के लिये बाजार में आ बैठी है!

वह सोचने लगी—आह! औरत का दिल क्या इस लिये बना है कि बीच बाजार में जिस तिस के हाथ चाँदी और सोने के टुकड़ों के भाव पर बेचा जाय? क्या उसने भली औरतों के बारे मे ऐसा ही सुन रखा है? नहीं तो, नहीं तो। उसकी माँ क्या कहा करती थी? वह सात्विकता और सदाचार की कितनी पक्षपातिनी थी। आह! कहाँ रामायण का पाठ, विनय-पत्रिका और सूर-सागर के भजनों का सभक्ति गान, ठाकुर—श्रीठाकुरजी की पूजा, और कहाँ यह कर्म! उफ! परलोक मे उसका ईश्वर उसके इस रूप को देखकर कितना असन्तुष्ट होगा। उसकी माता, स्वर्ग में रहने पर भी, उसके इस व्यापार के दर्शन कर किस नरक-यातना कष्ट का अनुभव करेगी। ना, ना उससे यह कर्म नहीं होने का। वह यहाँ से भी कहीं भागेगी। वह अपने तमाम जीवन को भाग भाग में बिता देगी। वह कष्ट सहेगी, पर इस बाजार में न बैठेगी।

इसी समय कुन्दन उस कोठरी में आई, मुस्करावी हुई। "उँहूँ" उसने कहा—"लगीं घबराने न! बेटी, मेरी

बात पर तुम्हें एतबार नहीं। मैंने जो कहा, किसकी मजाल जो मरजी के खिलाफ तुम्हारी ओर अँगुली तक उठा दे। गोकि यह सबसे गया बीता पेशा है, मगर बिलकुल ऐसा नहीं है कि इसमें इज्जतदारिनें रहती ही न हों। अरे इस रोजगार में तो ऐसी-ऐसी औरतें पायी जाती हैं—हिम्मती, शरीफ, दिलदार—कि अच्छे-अच्छों के छक्के छूट जाते हैं। मैं इस काम की एक एक नस से परिचित हूँ। तुम मेरे अक्षर-अक्षर पर विश्वास करो और निडर भाव से उनके आगे चलो। इस शहर के तीन रईस बैठे हैं। तुम जरा मुस्कराकर, जैसे मैंने सिखाया है, उनसे बातें भर करो—फिर देखो आगे मैं क्या करती हूँ।"

"नहीं माँ!" गिडगिडाकर जवाहर ने कहा—"मेरी हिम्मत नहीं पडती। मारे लाज के मैं गली जाती हूँ। मुझे चार दिन इस गली में रह लेने और जरा मजबूत दिल हो लेने दो, तब लोगों का सामना कराना।"

कुन्दन समझ गयी जवाहर के भावों से कि, वह बिलकुल ठीक कह रही है। उसने ज्यादा जोर देना गैर-मुनासिब समझा। वह "सज्जनों" के पास लौट आयी।

"मैंने कहा नहीं," उनसे बातें बनाने लगी—"वह, गृहस्थिन है। मेरी मौसी की लड़की है। वह तो यों ही,

बाज़ार निहारने के लिये, खिरकी पर बैठ गयी थी। मैं समझाते-समझाते हार गयी, वह आने को राज़ी नहीं। कोठरी में बैठी रो रही है।"

"मगर, कुन्दन !" एक सज्जन ने कहा—"उसके तीरे-नज़र के हम घायल हैं। राम ही जानते होंगे, कलेजा चलनी हो गया है।"

"कम-से-कम," दूसरे सज्जन बोले—एक बार तो ज़रूर उनसे हमारी मुलाक़ात कराओ। चाहे जैसे हो। हम हर तरह से हाज़िर हैं।"

"मुझे डर लगता है," कुन्दन बोली—"दूसरे की बेटी, दूसरे की बहू, चार दिनों के लिये मेरे यहाँ आयी है। अब अगर मैं कोई नाजायज़ फ़ायदा उठाऊँ इस मौक़े से, तो, ज़रूर मुझे शाप लगेगा। और, इस गली में पाप से चाहे न भी डरा जाय, पर, मेरी मौसी को पता चलेगा, लड़की के आदमी पर बातें खुल जायँगी तो मैं क्या जवाब दूँगी ? ना बाबू, इस गली में हज़ार जगहें हैं, हज़ार सूरतें हैं, आप किसी और को पसन्द करें।"

यार लोग ताड़ गये कि कुन्दन मुँह-दिखौनी में भी बिना कुछ लिये न मानेगी। यह सब भूमिका उस लड़की की शराफ़त की नहीं, रुपये ऐंठने की है।



"अच्छा हम आज जाते हैं," तीनों उठे, एक ने कहा—"ये रुपये लो। पचास हैं। कल उनसे एक बार भेंट करा देने का यह फीस है। आगे की बातें फिर होंगी हम चाहे और कुछ न चाहें, मगर एक बार उनसे मिले बिना हमें कल नहीं। समझती हो? कल—इसी वक्त!"

कुन्दन ने बिला उज्र रुपये सँभाल लिये।

पारसनाथ पर उस दिन, भयानक क्रोध सवार था। वही क्रोध जो अन्धा, बहरा, हृदय-हीन और पाप का मूल होता है। अपनी युवती और अभागिनी पुत्री को, बिना अपराध ही, अनेक घूँसे और थप्पड़ जमा, सैकड़ों दुर्वचन सुनाकर भी वह शान्त नहीं हुए। मुहल्ले में जो उनका अपमान हुआ था, उससे वह ऐसे उद्वेलित थे कि उस समय उनका वश चलता तो किसी का खून कर डालते।

लड़की को प्रताड़ना और प्रहार-पीड़ा से आँगन में कलपती और रोती छोड़ वह पुन घर से बाहर निकले। वह एक ओर बढ़े, बेहोशी में। मगर उनके पाँव होशियार

थे। थोड़ी देर बाद वह कलवरिया और कलाल के सामने थे।

"क्यों क्यों ठाकुर साहब," कलाल ने साश्चर्य पूछा—"आप लौटे कैसे? अभी तो पीकर घर की ओर गये थे?"

उन्होंने उत्तर दिया—'घर नहीं गया। नहीं जा सका। साला—उस साले को तुम नहीं जानते हो? उसी बूढ़े रामसरूप को। उसी ने सारा नशा किरकिरा कर दिया। पूछो, मैं किसी का दिया पीता हूँ या किसी के बाप की जमा उड़ाता हूँ। इन बदमाशों को क्या पड़ी है जो मेरे बीच में दखल देते हैं?"

"आखिर," कलाल का कौतूहल बढ़ा—"खैरियत तो है? किसी की गर्दन तो नशे में नहीं टीप आये हो? हजार मजेदार और बादशाही नशा होने पर भी गुस्से में यह दारू खूनी हो जाती है। आपको मालूम नहीं? परसाल मुलई भर ने अपनी गर्दन खो दी थी, इसी नशे में। यहीं से पीकर अपने घर गया था और वहाँ बेबात की बात पर अपनी जोरू से लड़ गया था। लड़ा भी कैसे—उस गरीब की गर्दन ही पकड़कर उमेंठ दी। वह वहीं ठण्डी हो गयी। उसी दम बेदम हो गयी। बस—दूसरे दिन पुलीस और हथकड़ी और अदालत। उसने लाख कहा कि वह नशे में था, अपने

आपे में नहीं था। पर अदालत ऐसी बातें कब सुनती है। उसको तो जान के बदले जान चाहिये। जज ने फैसले में बताया कि धोके में, दूसरे से पिलाई हुई शराब के नशे में, यदि ऐसी वारदातें हों, तो और बात है। पियक्कड यह कह-कर खून से नहीं बच सकता कि वह बेहोशी में था। बस टँग गये बच्चू। वह घटना मुझे भूलती ही नहीं। मेरी भी बहुत दुर्दशा हुई थी उस मामले में। अदालत में गवाही के लिये दौडते दौडते पाँव के तलवे घिस गये थे।"

"चौधरी!" पारस ने भर्राते कण्ठ से कलाल से कहा—"मैं और पीना चाहता हूँ।"

"हाँ, हाँ," उत्तर मिला "पीजिये। कितने का दूँ? कितना?"

"पैसे मेरे पास नहीं हैं। तुम तो जानते ही हो मेरी हालत। एक बोतल खूब कड़ी और जरा पुरानी दो न। कल कोई बरतन या कुछ और दे जाऊँगा।"

कलाल तो इन शर्तों पर पारस को पिलाने का अभ्यस्त था। इस तरह उसे एक के चार नहीं, तो दो जरूर मिल जाते थे। प्रसन्नता पूर्वक उसने उनको एक पुरानी बोतल दी। थोड़े चटपटे चने और एक कुल्हड़ भी। वह कल-वरिया के फाटक ही पर जमकर पीने और बड़बड़ाने लगे।

" हूँ हूँ मैं बदला लूँगा उस बूढ़े के लौंडों से। और नहीं तो किसी दिन धोके में, अँधेरे में, सालों को छुरा ही पेल दूँगा। बला से मुनई भर की तरह मुझे भी लटक जाना पड़े। हूँ ! लटकने की मुझे परवाह है।"

वह ढालते गये, पीते गये, बर्राते गये, मगर, उन्हीं लड़कों पर जिन्होंने उन पर हाथ छोड़ कर अपने पिता के मान की मरम्मत की थी। इस बीच में अपनी लड़की का उन्हें एक बार भी ध्यान न आया। वह उस पर तो नाराज़ ही नहीं थे। उसे उन्होंने जो मारा था वह इसलिये नहीं कि वह गाँव के आवारों को जुटाकर, पाजीपना कर, उनका पानी उतारती थी। इसलिये भी नहीं कि वह पिसौनी-कुटौनी कर उनका नाम हँसाती थी। उन्होंने तो गली के अपमान की कसर घर में निकाली थी।

उस दिन उन्होंने इतनी पी थी कि वह बोतल समाप्त होते-होते उनके होशोहवास जाते रहे। कलवरिया के दरवाजे ही पर टाँग पसार कर, आँखें खोले हुए, वह नाक बजाने लगे। वह सो नहीं गये थे—जाग रहे थे, मगर नाक उनकी बोल रही थी। इसी अवस्था में सुबह हो चला, पौ फटने लगी। उदार प्रात समीरण के अनेक शीतल सुखद झोंके कलवरिया के पतितों के पाँवों, आँखों और अङ्गों को

गुदगुदा गये। पारस की तन्द्रा भी टूटी। उनके होश भी लौटे। ओह! वह सोचने लगे—सारी रात यहीं कट गयी। वह घर गये ही नहीं। उनकी लड़की बेचारी बैठी न होगी, उनकी बाट जोहती हुई?

तुरन्त वह दौड़े घर की ओर—अपनी लडकी की ओर। जैसे रात-भर जंगल में भटकी हुई गाय सवेरा देखते ही अपने थान और बच्चे के लिये दौड़े। वह बहुत प्यार करते थे उस लडकी को।

रास्ते में रात की घटनाएँ जैसे उन्हें याद आने लगीं। याद आयी—वह किसी से लड़ गये थे, उन्होंने किसी बूढे को दो तीन थप्पड़ मारे थे! और—और उनका भी किसी ने अपमान किया था। हाँ—रात में—वह ज्यादा पी गये थे। ओह! अभी तक सर इस तरह धमक रहा है मानों भीतर हथौडे चल रहे हैं। उनकी गति तीव्र-से तीव्र-तर हुई।

रात में वह घर पर भी गये थे—गये तो थे। हाँ-हाँ गये थे। वह रसोई बना रही थी। भीतर से आँखें पोंछती हुई निकल कर आयी थी। और याद नहीं आता. हाँ उन्होंने उस पर क्रोध प्रकट किया—उसे मारा था। मारा था—उस गऊ-सी सीधी लड़की को? शराब के नशे में? आयँ!



अब पारस को पता चला कि उन्होंने रात में कैसी निष्ठुरता या भूल या पियक्कड़ई की थी। अब वह आगे न सोच सके। तीर की तरह झपटे अपनी बेटी की ओर—घर की ओर।

पारस के मार-पीट कर चले जाने पर कोई दो घंटे तक तो उनकी लड़की बिसूर बिसूर कर रोती रही। इसके बाद वह गम्भीरता से सोचने लगी। सोचने लगी अपना और अपने पिता का भविष्य। उसे चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार दिखाई पड़ा। न खेत बचे थे, न खलिहान। घर भी नहीं था और उसमें चार दाने या चुल्लू भर आटा भी नहीं था। कुछ दिनों से गहने-बरतन पर गुजर हो रहा था, लेकिन अब वह पूँजी भी अन्तिम साँसें ले रही थी। फिर ऐसे घर में, ऐसे बेहोश पिता के साथ रह कर, कब तक वह गुजर कर सकेगी ?

इस प्रश्न या इन प्रश्नों पर उसने उस दिन के पहले भी विचार किया था। मगर, विचारने के सिवा वह कर ही क्या सकती थी। उसे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था। हाँ, ठाकुरजी के चरणों पर माथा जरूर कचाकच पटकती थी, पर वह तो अन्धे निकले, बहरे निकले, जड़ निकले, मूक निकले। उन्होंने उसका कुछ भी भला नहीं किया।

तो क्या अब वह दिन-भर कुटौनी पिसौनी करे—पेट के लिये, पिता के लिये, और शाम को थप्पड़ खावे, गालियाँ सुने ? ऐसा व्यापार कब तक चल सकता है ? या भगवान ! दुनिया भर का दुर्भाग्य उसी बेचारी के माथे में सजाना था ?

आह ! किस बेरहमी से पिता ने उसे गालियाँ दीं, किस निर्दयता से उसका मुँह पीटा ! अब वह मार खाया करेगी ? अनन्त काल तक ! ना, ना । इस कष्ट, इस अपमान से तो मौत ही अच्छी । वह मरेगी अब—उसका मरना ही भला ! नाश हो इस जीवन का, आग लगे इस घर में, चूल्हे में जायँ ये ठाकुर और देवता—कोई उसके घाव पर मरहम रखनेवाला नहीं, नमक भुरभुरानेवाले सभी । यहाँ तक कि अपना बाप भी !

बस, अब किसी कुएँ में डूब मरना ही उसका अन्तिम सुख होगा ।

मानो उसे भी शराब चढ आयी । वह निकली अपने घर के बाहर । दरवाजे को ज्यों-का-त्यों खुला छोड़, लोगों की नजरें बचाती, गली पार हुई, मुहल्ले के बाहर आयी—सड़क पर आयी । वह बढ़ चली तेजी से एक ओर । कुछ दूर जाने पर, सड़क से थोड़ी दूर, पर उसे प्रकाश दिखाई पड़ा, कोलाहल सुनाई पड़ा । वह पहचान गयी उस स्थान

को। वही कलवरिया थी, जहाँ पर उसके पिता अपने सर्वनाश का जाप किया करते हैं। उसने सोचा, हो-न हो उसके पिता वहाँ हों। वह देखे न एक बार जाकर। हों तो पुकारे, बुलावे और रोकर कहे—"बाबा, छोड़ो इस मुशीगञ्ज को। यहाँ पर तुम्हारे शनैश्चर ने डेरा डाला है। आओ चलो हम बाप-बेटी कहीं दूर भाग चलें। हम भीख माँग कर पेट पालेंगे। पर यहाँ के अपमानो से तो बचेंगे।" वह बढी भी उसी ओर, पर दो-चार कदमों ही पर ठिठकी उसे याद आयी, उसके पिता उसके चरित्र पर भी शाम को लांछन लगा रहे थे। कलवरिया मे उसे देख कर तो वह आग ही हो जायँगे। यह मोह है, यह दुर्बलता है। अब उसका इस ओर न बढना ही अच्छा है। उसे डूब ही मरना चाहिये।

वह फिर अपने रास्ते पर चली। कुछ दूर आगे गयी होगी कि एक आदमी उसे मिला। वह आगे था पर इसकी आहट पाकर रुका। जब यह निकट हुई तो पूछा उसने—

"कौन ?"

यह चुप रही। आदमी निकट आया। अन्धकार था सडक पर, पर वह ताड गया कि कोई औरत है।

"तू कौन है ? अन्धेरी रात में कहाँ जा रही है ? बतलाती क्यों नहीं ?"

"मैं कोई हूँ, तुम अपने रास्ते जाओ। तुमसे मतलब ?"

"अरे! तू है!!" वह पहचान गया "कहाँ जा रही है ? पारसनाथ क्या गाँव में नहीं हैं ?"

वह भी उस व्यक्ति को पहचान गयी। वह गाँव का एक ठाकुर था जो प्राय प्रयाग में रहता था, नौकरी के व्याज से। उसने सरल भाव से अपने सारे मनोकष्ट उसको सुना दिये। और अन्त में रोती हुई बोली—

"मेरे लिये डूब मरने के अलावा अब दूसरा रास्ता ही कहाँ है ?"

"पागल कहीं की," उस ठाकुर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"मरने से लाभ ? अरे पछतायगी कुएँ में फाँदने के बाद। जान योंही नहीं निकलती। मेरी बात मान—छोड़ पारसनाथ को। मेरे साथ चल। मुझे वहाँ अपने हाथ से रोटी पकानी पड़ती है। तू रहेगी तो उससे मैं बच जाऊँगा। खाना, पहनना, पडी रहना। मेरी बात मान!"

उसने एक बार कहा—नहीं, फिर कहा—नहीं और फिर वही कहा, पर मरने से डर गयी वह। अत उस व्यक्ति की विजय हुई। वह एलाहाबाद जाने के लिये स्टेशन की ओर ही तो जा रहा था। बस, साथ ही-साथ दोनों वहाँ गये और टिकट कटाकर प्रयाग के लिये रवाना हो गये। अस्तु

घर पर पहुँचकर पारसनाथ ने देखा बाहरी दरवाजा खुला था। इतने सवेरे द्वार खुला देख उनके मन में कुछ सन्देह-सा हुआ। सोचने लगे माजरा क्या है? क्या वह अभी तक बैठी रो ही रही है। उसे उतना कष्ट पहुँचा कि दरवाजा बन्द करने का ध्यान भी न रहा। या कोई और बात है? घर में, रात में, गाँव का कोई एँ। वह तेजी से आगे बढ़े। भीतरी दरवाजा भी उसी तरह खुला मिला। इस बार उन्होंने धीरे से, मानो डरते हुए आवाज दी—

"बची!" वह उसे इसी नाम से पुकारते थे। उसका असली नाम नहीं लेते थे।

कोई उत्तर न मिला। तब भीतरी कोठरी की ओर बढ़े, वह वहाँ भी नदारद! रसोई घर में झाँककर देखा, वह भी नहीं। इस बार जोर से उन्होंने पुकारा, भर्राये गले से—

"बची! बचिया रे!!"

मगर, बचिया थी कहाँ? अब उनका कलेजा उछलने लगा। उनके मन में कोई दारुण सन्देह उठने लगा। पर अपने सन्देह पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। वह अपनी बचिया को जानते थे, उससे उन्हें वैसी आशा नहीं थी। उन्होंने सोचा हो-न हो किसी काम से किसी पड़ोसी के यहाँ गयी हो।

उन्होंने यह नहीं विचार किया कि अभी तो पड़ोसी मजे में जागे भी न होंगे।

अब घर के बाहर आकर उन्होंने आवाज दी—"बचिया!"

एक पड़ोसी ने निकलकर पूछा—"क्या है ठाकुर ? कहाँ गयी है बचिया ?"

"मालूम नहीं," नीरसता से उसे उत्तर देकर वह पुनः पुकारने लगे उसको।

जब घर और बाहर उसका पता न चला, दिन निकल आया मगर वह पारस की नजरों से छिपी ही रही, तब उनके मन में निश्चय हो गया कि उनकी बचिया हमेशा के लिये उनसे दूर हो गयी। दूर हो गयी ! निकल गयी ! मेरे पापों से घबराकर कहीं अपना मुँह काला कर गयी ! उफ, हाय रे मैं ! हाय रे मैं !

पारसनाथ के आँसू मानो गला फाड़ कर बाहर निकलने के लिये व्याकुल होने लगे।

उन्होंने आठ बजे सवेरे तक मुहल्ले के एक-एक घर के प्रत्येक व्यक्ति से अपनी बचिया का पता पूछा—व्यर्थ। यहाँ तक कि वह उन लौंडों के पास भी गये, रात्रि का अपमान भूलकर। क्योंकि बचिया की चिन्ता उनके माथे में करैत के जहर की तरह उस वक्त व्याप उठी थी, जिसके

आगे शराब नगण्य है। चार बजे शाम तक उन्होंने सारा मुशीगज, उसके खेत और खलिहान, बाग और बगीचे ढूँढ डाले। वह पूछते जाते थे, पुकारते जाते थे और अक्सर एकान्त पाकर उसके लिये आँसू बहाते जाते थे। वह सोच रहे थे—आह! वह निकल गयी। मेरे सात पुश्त की नाक काट गयी। मेरे पुरखों के स्वर्ग को नरक बना गयी। और क्यों? इसलिये कि मैं वेणु वश में घमोई सा पैदा हुआ हूँ। जब तक वह मेरे सामने थी, मैंने उसके भविष्य का कभी विचार नहीं किया। अपने दैहिक स्वार्थों में, मन के विलासों में फँसा रहा। वह युवती हो गयी, पर मैं उसे किसी भले वर के हाथो में सौंप न सका। क्यों न सौंप सका मैं? था क्या नहीं मेरे पास? मैं आधे मुशीगज का जमींदार था, मैं धर्मावतार था, मैं सरकार था—और मेरी बेटी बिन ब्याही आज घर से निकल गयी!

मुशीगज के पास पड़ोस का एक एक कुआँ झाँक तथा प्रत्येक तालाब ताककर, उसे न पाकर, थककर चूर होकर, सूर्यास्त के समय वह पुन अपने घर पर लौटे। लोग रास्ते में पूछते—वह मिली? पारस परास्त और दीन-सा मुँह बनाकर प्रश्नकर्त्ता की ओर ताक भर देते। वह इतने ही से सारा पता पा जाता, जान जाता कि वह



उनके मुँह पर अमिट काजल पोतकर कहीं निकल गयी।

घर में आकर, यह जानते हुए भी कि वह नहीं है, अभ्यासवश या मन के भीतर बैठी मृग-मरीचिका-मयी अमर आशावश, उन्होंने पुन उसे पुकारा—

"बचिया—बची!"

वह फिर एक-एक कोठरी में खोजने लगे। विक्षिप्त-से हो गये। उन्होंने सन्दूक खोलकर आवाज दी—"बचिया," और जब उत्तर नहीं मिला तो बक्स को उठाकर धम्म से आँगन में फेंक दिया। ताखे के पास जाकर पुकारा—"बचिया," और वह नहीं बोली—उन्होंने ताखे की चीजों को दोनो हाथों से सारे कमरे में बिखेर दिया। ठाकुरजी की कोठरी में जाकर उनके धैर्य का दीवाला निकल गया—

"धत्त—धत्त! बचिया नहीं रही और ये पत्थर जमे बैठे हैं। वह इन्हीं को तो भगवान मानती थी। इन्हीं को तो पूजती थी। उसका इन्होंने उसे कौन-सा फल दिया? यही अपमान? यही, घर-बार छोड़कर कलङ्किनियों की तरह मुँह काला करने का सुख? ठाकुरजी हैं ये!"

उन्होंने एक-एक मूर्ति को सावधानी से चुनकर असावधानी से बाहर फेंक दिया और इसके बाद उसी कोठरी में बैठकर अपनी मूँछ के बाल नोचने और रोने लगे।

"हाय रे! आज ये मूँछें झुक गयीं। आज क्षत्री की मर्यादा मिट्टी में मिल गयी! आज मेरे जीवन में, ससार मे, लोक-परलोक में आग लग गयी—सब कुछ जल गया!

हीरा के पति ने "सेक्स साइकालिजी" का अध्ययन नहीं किया था। उसने तो जीवन के महज तीन ही बरस स्कूल में बिताये थे। पैसेवाले का पुत्र था, दुलार खूब होता था, इसीलिये नौ वर्ष के वय तक तो उसने क और ख का परिचय भी नहीं प्राप्त किया था। दसवें वर्ष में ढोल, मृदग, शख, शहनाई बजा कर, ढाई सौ ब्राह्मणों को पक्की और दो सौ शूद्रों को कच्ची रसोई खिलाकर, राई-लोन उतार कर, एक फ़क़ीर द्वारा मोर-मुर्छल से उसके दुष्ट ग्रहों को शान्त कराकर, बायीं कलाई में भैरवनाथ का काला गण्डा और माथे की बायीं ओर काजल का एक दद् टीका लगा कर, पाँच ब्राह्मण और तीन नाई के साथ, वह विद्याभ्यास के लिये, "टाउन वर्नाक्यूलर हाई-स्कूल" में भेजा गया। यद्यपि वह कुछ भी नहीं जानता था, फिर भी उसके बाप ने प्रधानजी से प्रार्थना कर उसे

थर्ड क्लास की एक बेंच पर स्थान दिला दिया। और बस, तीन बडे-बडे वर्ष उसी थर्ड क्लास के पास करने में व्यतीत कर, बराबर निस्संकोच फेल होकर, उम्र के तेरहवें वर्ष के अन्त में वह स्कूल से विदा ले आया। उसी साल उसकी पहली शादी हुई। तीन वर्ष बाद गौना हुआ और इतने दिनों पर भी जब लडकी घर मे आयी तो लोगो ने देखा उसका वय दस वर्ष के कुछ ही ऊपर था। इसी लिये इस बार हीरा जैसी सयानी लड़की को तलाश कर उसके बडों ने उसको सौंपा।

उसे न तो समाज ने बताया था और न अनुभव या उद्योग ने कि पर-घर में आयी हुई नयी नवेली कुमारी का हृदय कैसे जीतना चाहिये। वह तो इतना ही जानता था कि ब्याह के बाद अपने घर में आयी हुई पराई लडकी, जाल में फँसा हुआ शिकार है, मुट्ठी में आया हुआ दुश्मन है। अपनी शर्तोंपर उसको अपनाओ, अपनी मर्कों पर उसे नचाओ।

उसे यह नहीं मालूम था कि, गोबर के और चावल, दाल, रोली के हजार देवताओं की उपस्थिति में केवल ब्याह हो जाने से परायी लडकी तुरन्त प्राणेश्वरी, जीवन-वल्लभा, पतिप्राणा, सती नहीं बन जाती। जैसे चाँदी की अठन्नी

सुनाने से फौरन आठ आने पैसे तैयार हो जाते हैं। अपनी ही स्त्री होते होते जीवन-सहचरी हो सकती है, वह भी, जब कोई पाटी सा भाग्यशाला हो। नहीं तो एक बाँदी मात्र घर में पड़ी रहती है, जिस पर व्यक्ति विशेष का सामाजिक कब्जा होता है। कब्जेदार संसार में घोषणा करता फिरे कि वह उसकी क्या है और क्या है, पर बाँदी के दिल में अपने स्वामी के प्रति बहुधा कैसे भाव होते हैं, इसे कौन जानता है। इसे जानने की पर्वाह ही किसे है?

यदि हीरा का पति शान्ति, सावधानी और सहृदयता से काम लेता, धीरे धीरे उसके हृदय पर कब्जा करता, कब्जा करने के पूर्व उसमें पैठने और देखने की कोशिश करता—उसकी संगिनी के सुख क्या हैं, दुख क्या हैं, वह चाहती क्या है, नहीं क्या चाहती—और तब, उसकी परिस्थिति से सहानुभूति के साथ, उसे अपनाना चाहता तो उसे हीरा के प्रेम से इतना निराश न होना पड़ता। क्योंकि, आखिर वह उसकी ब्याहता स्त्री ही थी। संसार की और किसी भी स्त्री के हृदय से, कब्जा करने के लिये, अपनी स्त्री का हृदय अधिक सन्निकट होता है। मगर प्रेम के सूक्ष्म रहस्यों का पता उसे नहीं था। वासना की निकित क्रीडा ही को वह प्रेम समझता था।

फलत पति होने पर भी हीरा उससे घृणा करने लगी।

वह दिन भर घर के काम-काज में तल्लीन रहती, रसोई करती, महरी के आने में जरा-सी देर होते ही चौका और बरतन तक चमका देती, इस पर भी फुर्सत रहती तो सास की देह में उबटन लगाती, जेठानियों के बाल गूँध देती, मगर, पति नामक उस पशु के नाम से भी वह दहल जाती। पहले तो वह ऐसी चेष्टा करती कि उससे सामना ही न हो, और इस पर भी यदि सामना होता, तो ग्लानि से, शोक से, घृणा से, ऐसे सकुचा जाती जैसे वायु के तीव्र स्पर्श से लज्जावती लता।

पति उसका हफ्तों तक सरे शाम ही से कोठरी में आकर पड़ा रहता, किसी-न-किसी बहाने से उसे पुकारता भी, पर वह न जाती। सास जाने के लिये जोर डालती तो वह बच्चियों की तरह रोने लगती। जेठानियाँ कुछ बोलतीं तो उसे क्रोध आ जाता।

"क्यों रे," एक दिन मौके से पाकर उसके पति ने पूछा उससे—"तू भागती-भागती क्यों फिरती है ? गोया मैं तेरा कोई हूँही नहीं। ऐं ?"

वह निरुत्तर खड़ी रही, सर झुकाये। पति को आवेश आ गया। उसके निकट जाकर, उसका मुँह ऊपर उठाकर पूछा—



"तुझे तेरे बाप के घर भेज दूँ ?"

उसने कहा—"हाँ, मुझे भेज दीजिये। मैं हाथ जोड़ती हूँ, मुझे वहीं भेज दीजिये।"

"फिर सपने में भी इस घर में न बुलाऊँगा—याद रहे।"

उसने कहा—"न बुलाइयेगा। मुझे रतनपुर से अधिक स्वर्ग भी प्यारा नहीं।"

उसके इस उत्तर पर उसके पति को सन्तोष नहीं हुआ, बल्कि, मन में क्रोध और सन्देह उठने लगा। वह बोला—

"इसी तरह रतनपुर प्यारा था तो यहाँ आयी ही क्यो ? वहीं रहती।"

"मैं अपनी इच्छा से तो यहाँ आयी नहीं हूँ। मेरा वश चलता तो मैं अपने पिता का प्यारा घर, मर जाने पर भी, न छोड़ती।"

"कौन है रतनपुर में रे," हीरा के पति ने जल भुन कर व्यंग किया—"जिसके लिये तू पागल है ? जरा मैं भी उसका नाम सुनूँ।"

इस प्रश्न से इस व्यंग से, हीरा की छाती में आग सी लग गयी। उसका मुँह धुआँ सा हो उठा। वह कमरे से बाहर की ओर बढ़ी, ताव से—

"मुझसे ऐसी बातें न किया करो। मैं नहीं सुनती ऐसी गन्दी गालियाँ। तुम्हारी जो हो उसे यह सब सुनाओ।"

मगर उसके पति ने बीच ही में उसे पकड़ा।—'यह बाबा का घर नहीं है कि ऐसी तावबाजी चलेगी। जैसे भली औरतें भले घरों में रहती हैं, वैसे ही रहना होगा। नहीं तो—नहीं तो।"

उसने परवस उसे अपने वक्ष के पास खींच लिया। हीरा उसके आलिंगन-पाश से बचने की कोशिश करने लगी। रोती लडकी की तरह मुँह बिगाड़ कर, माथे पर शिकन डाल कर।

इस खींचातानी का परिणाम वही हुआ, जो स्वाभाविक था। उसका पति नये जोश से बाजार की हवा खाने लगा। अब वह रात-रात भर गायब रहने और घर में लौटने पर भी उससे दूर रहने लगा। गोया दोनों मे कोई सम्बन्ध ही न हो। हीरा की जेठानियाँ उसे समझातीं, कि अभी जवानी के नशे में तू उनका तिरस्कार कर रही है, आगे चलकर झरेगी, पाँवों पड़ेगी और उस हृदय को न पा सकेगी। देख, सँभल, तेरा भाग बाजार की कुतियो के आगे, तेरी असावधानी के कारण, डाला जा रहा है।

लेकिन उसपर इन उपदेशों का कोई प्रभाव न पड़ा। वह उस पति नामधारी प्राणी को न चाह सकी, न चाह सकी। वह बराबर, किसी और ही बात को सोचती रही।

उसके हृदय के स्पन्दन का रहस्य, उसके अलावा, और कोई भी न जान सका।

आखिर, एक दिन उसका पिता रामपुर आया और उसके श्वसुर से अनेक चिरौरी विनती कर, कुछ महीनों के लिये, उसको रतनपुर विदा करा लाया। वह इस तरह प्रसन्न होकर ससुराल से घर की ओर चली जैसे कैदी जेल से रिहाई पावे!

पन्नालाल ने उस दिन प्रात काल ही मानिक को अपने सामने बुलवाया।

"तुम अब पढ़ोगे नहीं? छुट्टियाँ खतम हो गयीं, स्कूल खुल गये, पर तुम जाते नहीं। तुम्हारा—इरादा क्या है, आखिर?"

"बाबूजी," सहमते हुए, नीची आँखें कर, मानिक ने उत्तर दिया—"मेरा जी टूट गया है, फेल हो जाने से। मालूम पड़ता है, मुझसे अब पढ़ा न जायगा।"

"पढ़ा न जायगा?" उसकी ओर बहुत गम्भीर आकृति

से देखकर पन्नालाल ने पूछा—"तब करोगे क्या जिन्दगी में भैया ? इस जमाने में जो पढता नहीं—और C A T कैट R A T रैट नहीं पढ़ता—वह अपने भविष्य को अन्धकार में गाडने के लिये अपने आप गढा खोदता है। तुम तो दसवें दर्जे ही में फेल हो गये और मैं इस उम्र म आकर अफसोस से हाथ मलता हूँ कि मैं दसवें तक ही पढ कर क्यो रह गया ? मुझे वैसी सुविधाएँ क्यों न मिल सकी कि, यहाँ से बी० ए० होकर बाहर जाता और वहाँ से बैरिस्टर होकर चमाचम चमकता हुआ रतनपुर में—आठवे आश्चर्य की तरह—आता। ओह! मैं बैरिस्टर न हुआ, नहीं तो आज मैं करोडपती होता।"

अन्तिम शब्दों को पन्नालाल ने मानिक से न कह कर स्वभावत स्वगत कहा था। वह और अधिक प्रतिभाशाली क्यो न हो सके, और धन क्यों न जोड सके, इस बात का दु ख हमेशा उनके मन को होता रहा। यद्यपि वह दूसरे के बाहु-बल पर अपनी आकाक्षाओं की स्वर्ण-लका उठाने के अभ्यस्त नहीं थे, यद्यपि वह बहुत अनुभव से इस बात को जानते थे कि यहाँ पर अपनी जिस इच्छा की पूर्ति हम स्वय करने में समर्थ नहीं होते उसकी पूर्ति होती ही नहीं, फिर भी अपने लड़के से किसे आशा नहीं होती ? उन्होंने भी

मानिक को लेकर बहुत से सब्ज बाग बना रखे थे। सोचा था लड़का तेज है, पढ़ेगा—खूब पढ़ाऊँगा, विलायत तक भेजूँगा और रतनपुर को दिखादूँगा कि किस्मत ने जैसे सब कुछ विशेष मुझे दिया है, वैसे ही पुत्र भी दिया है। वह चाहते थे, मन ही मन मगन होकर कामना करते थे कि, कानूनी ज्ञान में, दक्षता में, रुपये पैदा करने में, मानिक उनसे आगे—कहीं आगे हो। वह हारेंगे, हारना चाहते हैं, अपने पुत्र की महिमा से। उन्होंने सोचा था—आहा! वह कैसी सुख-मयी, गौरव-मयी हार होगी।

वह गार्हस्थिक जीवन में मानिक से विशेष सम्पर्क न रखते थे, बल्कि उसके आगे दुर्वासा-गोत्र के पिता का रूपक बनाये रहते, कम बोलते, रूखा बोलते थे। पर, मन ही-मन चाहते उससे सभी तरह के पुत्र सुख थे। मगर इधर कई महीने से उसके रंग ढंग पन्नालाल बाबू को बहुत खले। उसका बराबर अन्यमनस्क रहना, घर से, आदमियों से, दूर-दूर रहना, कम बोलना, फेल हो जाना—आदि, आदि, उनको कुछ अशुभ सूचक से लगे। जब उन्होंने यह सुना कि मानिक फेल हो गया तब उनका कलेजा धक से होकर रह गया। उन्हें अपनी श्रवणशक्ति पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। असफलता का पन्नालाल से, उनके परिवार से,

उनके पुत्र से भी कोई सम्बन्ध हो सकता है, यह वह मानना ही नहीं चाहते थे। पर बात सच थी, क्योंकि यहाँ पर ऐसी कोई भी बात नहीं जो समयानुसार सच न हो सके।

घर में उन्हें यह भी पता चला कि लडका आजकल खर्चीला हुआ जा रहा है। जब यह सवाद मानिक की माँ ने उन्हे सुनाया तो आश्चर्य से मुँह फैला कर वह रह गये—"खर्चीला हुआ जा रहा है? मानिक? कौन देता है उसको खर्च करने के लिये? मैं तो नहीं देता। देती हो न? तुम्हीं ने उसकी आदत बिगाडी है। और वह पाता कहाँ से होगा?" वह बहुत देर तक फिटकारते रहे अपनी पत्नी को—"यह औरतों की बहुत बुरी आदत है, जो इस तरह के प्रेम से, मोह से, पाप से, लडको का भविष्य बिगाड़ती हैं। आज तुम उसे दस बीस देकर परचा रही हो। कल वह सौ-दो सौ माँगेगा, न दोगी तो कर्ज करेगा और फिर सौ दो सौ के सूद ब्याज-समेत हजार दो हजार माँगेगा। चोरी करेगा, घर का नाश कर देगा। ना, तुम मेरे लडके के बीच में ऐसी बेवकूफ दस्तन्दाजी न किया करो।"

इस बात के लिये इतनी गम्भीरता से उन्होंने झिड़का अपनी पत्नी को कि वह बेचारी रो पडी। सिटपिटा कर रह

गयी। क्या बोलती, बेशक उसी ने तो चोरी छुके रुपये दे-दे कर मानिक को ऐसा ख़र्चीच होने दिया था। वह ग़रीब करे तो क्या करे, उसका मानिक जब उदास मुँह बनाकर, ठनगन कर, रार कर, उससे कुछ माँगता है, तो बिना दिये उससे रहा नहीं जाता। उसका बस चलता, और मानिक माँगता, तो वह अपना कलेजा भी मुस्कराती हुई निकाल देती उसके लिये। इतनी सम्पत्ति, ऐसी आमदनी और एक ही मानिक। भला ऐसे राजा के लिये वह क्या नहीं कर सकती।

पन्नालाल अपनी पत्नी के हृदय के इस मृदु-रहस्य को रोप-पूर्वक जानते थे। उन्होंने अनेक युक्तियाँ सोचीं अपनी पत्नी को अपनी-सी बनाने की, मगर वह न बन सकी। पत्थर जल की छाती न तोड सका, हाँ डूब जरूर गया। वह उससे पार न पा सके। अस्तु, बहुत विचार पूर्वक उन्होंने "डाइरेक्ट एक्शन" लेने का विचार किया। मौन तोड कर स्वय मानिक को दुरुस्त करने का इरादा किया।

"देखो," उससे कहा उन्होंने—"मैं तुमसे निहायत नाराज़ हूँ। मैं चुप रहता हुँ, इसका यह मतलब नहीं है कि मैं देखता या सुनता नहीं। तुम्हें मालूम नहीं, चुप रहने से देखने-सुनने की ताक़त दसगुनी बढ जाती है। मैं चुप

उनके पुत्र से भी कोई सम्बन्ध हो सकता है, यह वह मानना ही नहीं चाहते थे। पर बात सच थी, क्योंकि यहाँ पर ऐसी कोई भी बात नहीं जो समयानुसार सच न हो सके।

घर में उन्हें यह भी पता चला कि लडका आजकल खर्चीला हुआ जा रहा है। जब यह सवाद मानिक की माँ ने उन्हें सुनाया तो आश्चर्य से मुँह फैला कर वह रह गये—"खर्चीला हुआ जा रहा है? मानिक? कौन देता है उसको खर्च करने के लिये? मै तो नहीं देता। देती हो न? तुम्ही ने उसकी आदत बिगाडी है। और वह पाता कहाँ से होगा?" वह बहुत देर तक फिटकारते रहे अपनी पत्नी को—"यह औरतों की बहुत बुरी आदत है, जो इस तरह के प्रेम से, मोह से, पाप से, लडको का भविष्य बिगाड़ती हैं। आज तुम उसे दस बीस देकर परचा रही हो। कल वह सौ-दो सौ माँगेगा, न दोगी तो कर्ज करेगा और फिर सौ दो सौ के सूद ब्याज समेत हजार दो हजार माँगेगा। चोरी करेगा, घर का नाश कर देगा। ना, तुम मेरे लडके के बीच मे ऐसी बेवकूफ दस्तन्दाजी न किया करो।"

इस बात के लिये इतनी गम्भीरता से उन्होंने झिड़का अपनी पत्नी को कि वह बेचारी रो पड़ी। सिटपिटा कर रह

गयी। क्या बोलती, बेशक उसी ने तो चोरी लुके रुपये दे-दे कर मानिक को ऐसा ख़र्चीच होने दिया था। वह गरीब करे तो क्या करे, उसका मानिक जब उदास मुँह बनाकर, ठनगन कर, रार कर, उससे कुछ माँगता है, तो बिना दिये उससे रहा नहीं जाता। उसका बस चलता और मानिक माँगता, तो वह अपना कलेजा भी मुस्कराती हुई निकाल देती उसके लिये। इतनी सम्पत्ति, ऐसी आमदनी और एक ही मानिक। भला ऐसे राजा के लिये वह क्या नहीं कर सकती।

पन्नालाल अपनी पत्नी के हृदय के इस मृदु-रहस्य को रोष पूर्वक जानते थे। उन्होंने अनेक युक्तियाँ सोचीं अपनी पत्नी को अपनी-सी बनाने की, मगर वह न बन सकी। पत्थर जल की छाती न तोड़ सका, हाँ डूब जरूर गया। वह उससे पार न पा सके। अस्तु, बहुत विचार पूर्वक उन्होंने "डाइरेक्ट एक्शन" लेने का विचार किया। मौन तोड़ कर स्वय मानिक को दुरुस्त करने का इरादा किया।

"देखो," उससे कहा उन्होंने—"मैं तुमसे निहायत नाराज हूँ। मैं चुप रहता हूँ, इसका यह मतलब नहीं है कि मैं देखता या सुनता नहीं। तुम्हें मालूम नहीं, चुप रहने से देखने-सुनने की ताकत दसगुनी बढ जाती है। मैं चुप

रह कर तुम्हारे साथ परदे के भीतर की खबर रखता हूँ। तुम्हारी एक-एक हरकत को डोलते बोलते देखता हूँ। मैं पूछता हूँ, अब तुम आवारगी करोगे? लुँगाडों के साथ घूमोगे और मेरी गाढ़ी कमाई को बेरहमी और लापर्वाही से बर्बाद करोगे? मैं पूछता हूँ, तुम मेरे नाम पर, इज्जत पर, बुढ़ौती पर, धब्बा लगाओगे?"

मगर मानिक ने मानो पिता की फिटकार सुनी ही नहीं। वह सहमा-सा जरूर खड़ा था, क्योंकि, छुटपन से ही वह डरता था अपने प्रचण्ड पिता से। जब वह दस बरस का था तो दो चीजों के नाम से भी दहल उठता था—एक भूत के, दूसरा अपने पिता के। वह उन्हें भक्ति से नहीं, भय से पिता मानता था। उसे जितनी देर तक पन्नालाल के सामने रहना होता, वह सोचता गोया शेर के सामने खड़ा है। कब भागे, कब शांति की प्राणमयी साँस ले।

पन्नालाल को अपने प्रति पुत्र के उक्त भावों या दुर्भावों का पता नहीं था। उसके सत्रह साल का हो जाने पर भी उनकी पितृ प्रकृति उसको दूध-पीता बच्चा ही समझती थी। उसके मन में भाव हो सकते हैं, उन भावों में शक्ति भी हो सकती है, ऐसी भावना भी उनके मन में नहीं होती थी।

वह अपने पुत्र को "ठीक करने" की शक्ति अपनी मुट्ठी में समझते थे।

"जाकर खा पी लो, स्कूल चलना होगा आज। तुम्हें शर्म लगती है तो मैं पहुँचा दूँगा। हेड मास्टर से परिचय भी करा दूँगा कि पहचान लीजिये, यही मेरे लायक़ बाबू मानिकचन्द हैं, जो फ़ेल भी होते हैं और शर्माते भी हैं।"

"बाबूजी," हिम्मत बटोर कर मानिक ने कहा—"मैं अब नहीं पढ़ सकता।"

"नहीं पढ सकता?" फिर तड़पे बाबू पन्नालाल "आवारगी कर सकता है? शोहदों के साथ मटरगश्ती कर सकता है? केवल भला काम नहीं कर सकता! ओह! बेटा, तुम मेरे पाप तो नहीं हो? तुम शरीफ़ के घर में पैदा होकर पढोगे नहीं! ज्ञान की ओर बढ़ोगे नहीं!!"

मानिक मौन रहा। शायद उसका कलेजा उछल रहा था, शायद वह वहाँ से पत्ता तोड कहीं दूर भाग जाने की कल्पना कम्पित मन से कर रहा था।

"अच्छी बात है, मत पढो।" पन्नालाल असन्तुष्ट-भाव से फिर बोले—"देखूँ कितने दिनों तक नहीं पढ़ते। मगर, इसका मतलब यह नहीं है कि मैं तुम्हें चारों ओर आवारगी करने दूँगा। जाओ, स्कूल के लिये नहीं, तो मेरे

साथ कचहरी चलने के लिये तैयार हो। मैं तुम्हें अकेले न छोड़ूँगा। जाओ।"

मानिक चुपचाप उनके सामने से सरक गया। वह बहुत देर तक भन्नाये से कमरे में टहलते रहे। इसी बीच में नौकर पेचवान और पीने का सामान सामने रख गया। तब उन्हें होश आया,—अरे वाह! इस लौंडे के फेर में मुझे पीने की याद ही न रही। तभी सोच रहा था कि दिमाग इतना भारी क्यों मालूम पड़ता है। इस नालायक से बक झक करने में सुबह का सारा नशा ही खाक हो गया।

वह पीने लगे और कचहरी के कागज देखने लगे। मगर, बीच-बीच मे उनका ध्यान सब ओर से उड़ कर मानिक की ओर चला जाता था। क्योंकि रह रह कर वह जोर से, अपने आप बोल उठते—"वाह! फिर करेगा क्या? सोचता होगा बाप-दादे की कमाई तो भरी ही है। अरे बेटे, मैं एक धेला जो दूँ हाँ, मैं भी अपने सिद्धान्त का घोर पक्का आदमी हूँ।"

कचहरी जाते वक्त बाबू पन्नालाल ने जब मानिकलाल को बुलवाया तो मालूम हुआ, वह घर में नहीं है। अभी खाना भी उसने नहीं खाया है, नहाया भी नहीं! इस समाचार पर पन्नालाल पुन भन्नाये, और यहाँ तक क्रुद्ध हुए कि

बिना किसी कुसूर ही के नौकर बेचारे पर कई थप्पड झाड गये। नशे में बकते हुए—"साले, पान में सुपारी डालकर लाता है। मैं सुपारी खाता हूँ? पान में सुपारी खाई जाती है?"

नौकर बेचारा समझ गया कि आज मार ही खाने की तिथि है। तभी तो पान में सुपारी डालने के लिये बाबूजी सजा दे रहे हैं।

मानिक गायब ही रहा। पन्नालाल अकेले ही कचहरी आये। देर भी हो गयी उस दिन। जब पहुँचे, बारह का घण्टा बज रहा था। उनके मुअक्किल कचहरी से पाँच बीघा दूर ही पर, सडक पर खडे, उनकी बाट जोह रहे थे।

फाटक में घुसते वक्त पन्नालाल ने देखा, छोटी सी एक भीड किसी को घेरे खड़ी थी। कचहरी के मुख्तार थे, बाफ़ुर्सत चपरासी थे, गवाही में आये हुए मलिन-देही किसान थे। सभी निहायत दर्द-भरी आँखों से किसी को निहार रहे थे।

"कैसी भीड़ है?" पन्नालाल ने अपने मुअक्किलों से दरियाफ्त किया।

"हुजूर" एक ने उत्तर दिया—"वहाँ, पास के पालनपुर गाँव का, एक गरीब और बूढा किसान है। घंटेभर पहले सेशन अदालत ने इसके लड़के को फाँसी की सजा सुनाई

है। तभी से बेचारा फूट-फूटकर रो और तड़प रहा है। गाँ
के दुश्मनों ने मुफ्त ही में बूढ़े की बुढ़ौती में धब्बा लगाया है।

"मुफ्त ही में क्यों—?" पन्नालाल ने मानो कुछ सोच
हुए पूछा—"क्या इसका लड़का बे-क़ुसूर था?"

"बिलकुल बे-क़ुसूर हुजूर," मुवक्किल ने जवाब दिया-
"हम सब खूब जानते हैं, इस मुकदमे को। हमारे गाँव
क़रीब ही है पालनपुर। हमारे यहाँ आजकल यही चर्चा रो
होती है। एक बेवा और जवान कोइरिन से गाँव के
आवारे और जोरावर, पैसेवाले,—काश्तकारों की यारी थी
उसी आपस की लाग-डाँट मे कोइरिन का उन्होंने खून किय
और पुलीस को पूजकर, नक़ली चश्मदीद गवाह तैयार कर
फाँस दिया दो बे-क़ुसूरों को। उन दो में एक तो कोई कोइ
है, जिसे जनम-कैद मिली है और दूसरा इसी का लड़का है
फाँसी पानेवाला।"

इसी समय भीड़ को चीरकर एक रूखा, दुबला, प्रेत-स
भयानक आदमी फाटक बाहर की ओर झपटा थोड़ा ही व
दौड़ा होगा कि पन्नालाल का दल उसके सामने आ गया
इस दल को देखते ही वह रुक कर पागलों की तरह खड़
हो गया। उसकी आँखें पन्नालाल पर जम गयीं।

"आह, मुख्तार साहेब!" वह बोला—"आपने चाह

होता तो आज मेरी गृहस्थी में आग न लगती। लोग कहते हैं आपकी जबान में यश है, आप उसे जरूर बचा लेते। पर मेरे पास रुपये नहीं थे, आपके पास हृदय नहीं था। बीच में लटक गया मेरा बच्चा—फाँसी पर। उफ! मेरा कोमल कलेजा फाँसी पर लटका दिया जायगा—इसलिये कि, आपने दयाकर उसे बचाया नहीं।'

एकाएक बूढ़ा देहाती उत्तेजित हो उठा—"तुम मनुष्य हो? नहीं, नहीं, तुम केवल मुख्तार हो। नाश हो तुम्हारी मुख्तारी का! जैसे आज मेरी झोपड़ी में आग लगी है, वैसे ही तुम्हारा महल भी नष्ट हो जाय—भस्म हो जाय। जैसे तुमने मुझे अपने बेटे के लिये रुलाया है—वैसे ही अपने बेटे के लिये रोते रोते तुम भी दम तोड़ो!"

पन्नालाल की ओर देखकर और बार बार घृणा से पृथ्वी पर थूककर वह एक ओर चला गया। पन्नालाल श्रीहत से जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये। उनकी सारी तेजस्विता काफूर हो गयी। उन्हें ऐसा लगा—गोया उस बूढ़े का शाप उनकी चारों ओर प्रेताट्टहास कर नाच रहा है!

जवाहर धीरे-धीरे कुन्दन के काम लायक हो गयी। कुन्दन सचमुच उससे दैहिक व्यापार नहीं कराना चाहती थी। उस व्यापार के लिये उसके मन में जैसी घृणा थी, उसे वही जानती थी। जवाहर को पाकर उसने मन ही मन यह निश्चय किया था कि इस बार वह ज़माने को यह दिखा देगी कि समझदार वेश्या, यदि गन्धर्व-विद्या में निपुण हो, तो उसे अपनी अनमोल आत्मा बेचकर अनन्त अनादर खरीदने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ सकती।

कुन्दन जब स्वयं युवती थी, तब हज़ार-दो हज़ार से आरम्भ कर दस पाँच रुपये तक उसने अपने सौन्दर्य और यौवन का सौदा किया था। पर ज्यों-ज्यों वह अनुभववती होती गयी त्यों-त्यों उसके हृदय-पट पर उस व्यापार का काला चित्र स्पष्टतर अंकित होता गया। उसके मन में अनेक बार यह विचार उठता कि यदि यही एक काम वेश्याएँ ज़रा क़ायदे से करें तो उनका सामाजिक महत्त्व कुछ-से-कुछ हो जाय। ओह! चाँदी के टुकड़ों के लिये शरीर बेचकर मनुष्य की ये बच्चियाँ, कैसी मूर्खता से अपना यह और वह लोक बिगाड़ देती हैं। समाज का हीन-से-हीन प्राणी केवल कुछ रुपये लेकर इनके घरों पर धावा

खोल देता है। कभी वासना से बेहोश अवस्था में, कभी नशा से पागल बन कर। जिन्हें "भले" कहे जानेवाले प्राणी अपने द्वार पर भी नहीं खड़े होने दे सकते, वे इन देह व्यवसायिनियों के कोठों पर आकर धूम चौकड़ी मचाते हैं, अनाप-शनाप बकते हैं, ऐसी फूहड़ फूहड़ भाव भंगिमा बनाते हैं कि लाज को भी लज्जा आ जाय। और, पैसे के लोभ से, वेश्याएँ उनकी उन्मत्तता को बर्दाश्त ही नहीं करतीं, गले से लगाती हैं। अपने कलेजे के प्रियतम-रस से सींचती हैं।

ऐसे ही विचारों की बाढ़ जब उसके दिल में आयी तभी उसने उस नवयुवक को "अपना"-सा बना कर रख लिया था। मगर, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। नवयुवक, उसके शरीर या हृदय के लिये उसकी ओर नहीं आकर्षित हुआ था। वह तो उसकी सम्पत्ति को लूट कर अपना धनाभाव मिटाना चाहता था। इसी से कुन्दन को उस उद्योग में सफलता और शान्ति के बदले असफलता और अशान्ति की प्राप्ति हुई।

मगर, जवाहर तो अभी बिलकुल जवान और अनुपम सुन्दरी है,—उसने मन-ही-मन विचार किया—इसको लेकर बहुत मजे में उस सिद्धान्त की परीक्षा की जा सकती है।

उफ ! यदि वह सफल हो सके इस परीक्षा मे ! यदि वह जवाहर की रूप-ज्योति के सामने तड़पा तड़पा कर एक बार पातकी पुरुष-पतिंगों के प्राण ले सके ! कैसी सुखी होगी उस दिन वह । कैसा सुन्दर बदला ले सकेगी वह धोकेबाज पुरुष-जाति से । हाँ, हाँ, वह चेष्टा करेगी, जवाहर स्वय यदि किसी के बाहुपाश में फँसना चाहेगी तो वह बाधा डालेगी, अपने अनुभव-मय उपदेश की पैनी छुरी से वैसे बन्धनों को निर्दयता पूर्वक काट फेंकेगी । वह एक बार रतनपुर को, समाज को, देश को, ससार को यह दिखा देगी कि, हजार पतित होते हुए भी, वेश्या हजारो पतितो को ता-ता-थेई नचा सकती है ।

उसने जवाहर को समझा दिया—"बेटी, मैं जो कहती हूँ, तू भूल कर भी किसी पापी पुरुष के हाथों तन का सौदा न करना । हमे दस-पाँच लाख रुपये की तो जरूरत नहीं है । अपना घर है ही । बस, तन ढाकने को कपड़ा और पेट पालने को चार रोटियाँ चाहिये हमें । इतना तो तू अपनी मुस्कराहट से पैदा कर सकती है । हाँ, मेरी कही मान, ये मर्दुए ऐसे कुछ होते हैं कि अपनी औरत के चुम्बन तक से नहीं सिहरते और न मुस्कराते हैं, मगर, बाजार की परायी लड़कियों के एक इशारे पर नाचने लगते हैं । ये पत्थर-दिल

गोया अपनेपन के दुश्मन हैं। ये हाथ लगे मोती को मिट्टी और दूसरे की खिड़की मे जड़े काँच को जवाहर समझते हैं। इन्हें मुट्ठी में रखने की एक ही युक्ति है, इनकी मुट्ठी में न आना।"

आरम्भ मे कुन्दन ने अपने एक पुराने परिचित उस्ताद से, सारंगी के तारो पर, जवाहर को आ आ आ आ आ का अभ्यास कराया, इसके बाद सा रे ग-म प ध-नी-सा का और इन सातो स्वरों के भिन्न भिन्न रूपों और अभ्यासों का। फिर हाथ से तान देना सिखाया। इन बातों को वह ऐसी सरलता से सीख गयी गोया पहले ही से जानती थी। उस्ताद उसकी बुद्धि की कुशाग्रता पर मुग्ध हो गया। उसने अनेक बार कुन्दन की उपस्थिति में उसे आशीर्वाद देते हुए यह भविष्यद्वाणी की कि—खुदा खुश रखे। जवाहर की समझ, सुभान अल्लाह!, गजब की है। जरूर एक दिन यह रतनपुर का नाम जगमगा देगी। उस्ताद ने सारे बाजार में एक-एक वेश्या के घर पर, उसकी प्रतिभा का वर्णन किया। इसका फल यह हुआ कि सुबह या दोपहर को जब वह उसे अभ्यास कराने आता और जवाहर अपने वीणा विनिन्दित स्वर से आ आ आ आ आ कर वायु की छाती में छेद करने लगती, तभी पास पड़ोस की तमाम तवायफें द्वेष से क्षुब्ध



और आश्चर्य से लुब्ध होकर, खिरकियों से गर्दन निकाल-निकाल कर, एक दूसरे से भेद-भरे इशारे कर, सुनने लगतीं।

"अरे, अरे !" सामनेवाली को सम्बोधित कर कोई जोर से व्यंग करती—"गौहर जान हैं !"

"सात हाँडी का कालिख ऐसी गौहर जान के चुड़ैल मुँह पर !" सामने वाली बोलती—"तुमने उसे देखा नहीं ? चट्टा चट्टा रग है, जैसा मेरा तलवा। फूले-फूले गाल हैं, गोया भिलावों का धुँआ तापा करती है। देहातिन है—भुच !!"

मगर, शाम को जब उसी भुच दिहातिन की खिरकी के नीचे सारा बाजार आ जुटता तब वे पड़ोसिनियाँ उसके सौभाग्य के निकट भविष्य को सोच कर, आह-मैं-न भयी-मयी एक ठण्ढी साँस खींच कर, रह जातीं। और, बीस पचीस दिनों बाद, जब वह कुछ गाने लगी तब तो उनकी आँखें चकपका कर रह गयीं। ऐसा बढ़िया गला ! ऐसी साफ़, सुरीली, दर्द-भरी, दिल में सीधे पैठ कर गुदगुदाने वाली, आवाज़ ! बाबा रे, आख़िर यह देहातिन है कौन ? यह कौन-सा तूफ़ान उठाना चाहती है ?

कुन्दन ने पहले जवाहर को चन्द "चलती चीजों का अभ्यास कराया। उस्ताद को उसने सलाह दी—उस्तादजी,

जवाहर बाई को आरम्भ में आप खूब मशहूर-मशहूर सीधी-सोधी चीज़ों का रेयाज़ कराइये। जैसे पीलू का यह पद—

ऑंगने में कुइयाँ खोदाव, मोरे राजा!
मैं भरूँ पानी तू दे ख तमाशा!

एक वह ग़ज़ल तैयार करा दीजिये जिसे आधे हिन्दोस्तान के आवारे, बिगड़े दिल, अमीर से लेकर एक्कावान और बावर्ची ख़ानसामे तक गाते हैं—गुज़र गया है ज़माना गले लगाये हुए।"

"चीज़ों" का वर्णन करते समय कुन्दन कभी-कभी, या अक्सर, उन्हें गा भी देती, उस्ताद को बताने के लिये कि मैं भी कुछ कम गुणी नहीं हूँ। जवाहर पर यह प्रभाव डालने के लिये कि मेरी झुर्रियों से और लागरी से, मुझे न पहचानो। मैंने भी एक ज़माना, इन्हीं टुकुर-टुकुर आँखों से, देखा है। हाँ!

इस तरह पहले एक दर्जन गाने उस्ताद ने तैयार कराये। इस बीच में खिड़की पर वह बराबर बैठती रही और कुन्दन लोगों को बराबर यही बताती रही कि वह उसकी मौसी की ब्याही हुई लड़की है। उक्त वक्तव्य में अब वह इतना और जोड़ देती कि उसका पति असा-

धारण-साधारण पूँजी का आदमी है, मेरे नाते वह उसको बाज़ार में बैठाने पर—अपनी आमदनी के लिये !—तैयार है। मगर केवल गन्धर्व-विद्या के लिये। क्योंकि गाना-बजाना तो हमारा सतयुगी पेशा है।

इस वक्तव्य—और व्यवहार में इसकी कटु सचाई—से शहर के आशिक मिज़ाज हैरान हो गये। सैकड़ो शौकीनों के कलेजे में, अपने ही से एक आदमी की बेटी को सबसे निम्न रुपये के बल पर, बेइज्जत करने के लिये, वासना के कलकतिये चूहे कूद रहे थे। वे चूहे जो जंगलियों से तिगुने कद्दावर, पचास गुने घृणित और सौ गुने ढीठ चोर होते हैं। लोगो ने कुन्दन को चाँदी के तराजू पर तौला, जवाहर का सोने की बाँटों से वजन किया, मगर उनका पलड़ा हमेशा अगद के पैर की तरह ज़मीन ही से लगा रहा। दशमुख को कौन कहे शत शत-मुख स्वर्ण मुद्राएँ उन्हें न डिगा सकीं। वे अपने निश्चय पर दृढ रहीं, मृत्यु की तरह।

जवाहर के रूप, यौवन और उसकी झूम-झूम आँखों पर क़ब्ज़ा करने को जितने लालायित थे उनमें अनेक भावुक भलेमानसों के फ़रज़न्द भी थे। वे दुबले थे, सुन्दर थे, गोरे थे, देखते ही शरीफ़ और भले लगते थे। कुन्दन

उनकी दिल भरी बातों को पहचानती, जवाहर उनकी उत्सुक आहों में अक्सर सचाई की सुगन्ध पाती। वे आते, पान मँगाते, सिगरेट पर सिगरेट फूँकते जाते, जवाहर की ओर इस तरह देखकर ऐसा मुँह बनाते जैसे, तू-मुझे मिल-ही-जा, आह रे-मरा, आँखों में हलाहल है।

जवाहर के आगे अपनी साखर्ची और सम्पत्ति दिखाने के लिये वे रुपयों को इस तरह लापर्वाही से फेंकते जैसे कोई साँस फेंके। जिस तरह प्रत्येक साँस जीवन की एक साँस कम करती है, वैसे ही उनकी उदारता द्वारा फेंका गया प्रत्येक रुपया उनके धनिक जीवन की एक एक साँस कम कर रहा था। मगर, इसकी उन्हें जरा भी चिन्ता नहीं थी। वे तो किसी भी मूल्य और शर्त पर एक बार जवाहर की उस तूफ़ानी काया पर अधिकार करना चाहते थे।

साधारणत बाजार की गायिकाए तीन श्रेणी में बँटी थीं। प्रथम की फीस दस रुपये, द्वितीय की सात और तीसरे दर्जेवालियाँ पाँच मे, बैठकर मुजरा करती थीं। इनके अलावा वे चौथी श्रेणीवाली भी थीं जिनके यहाँ कुली-कबाड़ी आशिकों की भीड होती। वे तीन रुपये में और कभी कभी दो ही में अपने प्रेमियों को क्या-क्या सुख नहीं दे देती थीं।



शुरू में कुन्दन ने जवाहर को दूसरी श्रेणी में रखा। सात रुपये नक़द, आठ आने दो वार के पान का ख़र्च और चार आने एक डिब्बी कैंची सिगरेट का मूल्य भी वह शौकीनों से वसूल करती। इतनी भीड होती उसके यहाँ कि वह प्रबन्ध न कर सकती। उक्त फ़ीस में जवाहर केवल एक घंटा गाती, दो गज़ल, एक भजन और एक कोई ग्रामीण पूर्बी या बिरहा अथवा ख्याल या नौटंकी की कोई दूसरी चीज़। जैसी सुननेवालों की फर्मायश होती। बिगडे दिल लोग एक मुजरा के ख़त्म होने के पूर्व ही दूसरे की फर्मायश करते, मगर, कुन्दन बाई अक्सर ऐसी फ़र्मायशों को, मीठे ढंग से नामंजूर कर देतीं—"हुज़ूर, नीचे अभी दस आदमी बैठे हैं। आप कल फिर तशरीफ़ लाइयेगा। अरे जवाहर बाई, बाबू साहबान को अपने हाथ से पान तो खिला दो।" जवाहर पान देने के लिये सजग बनावट से बढती। कुन्दन दाँत निकालकर शौकीनों के आगे मुस्कराने लगती—"क्या करें बाबू, हम तो सारे बाज़ार की बाँदी हैं। आप सभी, नहीं नहीं शहर का मामूली-से-मामूली आदमी तक, हमारे लिये सरकार है। हमें तो सभी को खुश रखने की फ़िक्र करनी पडती है।"

मानिकलाल पर पन्नालाल के "डाइरेक्ट एक्शन" का उलटा ही प्रभाव पडा। पिता के सामने से हटकर जब वह अपनी कोठरी में आया, एकान्त में मन ही-मन उनके तमाम वक्तव्य पर विचार कर गया, तब उसके मन में विद्रोह की विकट लालसा नाच उठी। हूँ हूँ!—उसने सोचा—मैं इतना बड़ा जवान हो गया और यह अब तक वही लड़कपन वाला रोब गाँठे जा रहे हैं। आख़िर, औरों के भी पिता हैं—पर वे ऐसे मारू काटू तो नहीं हैं। एक गोपाल ही के बाप को देखो! कितनी उसे स्वतन्त्रता है। जो चाहता है, कर सकता है। उसे सौ-सौ रुपये पाकिट ख़र्च के लिये मिलते हैं! वह अपने ही घर में शराब की दावत भी दे सकता है, बाप ही के नौकरों से मित्रो के गिलासो में लाली भरा सकता है। एक मेरे पूज्यपाद हैं।

मुझसे नहीं पढा जाता, मैं नहीं पढ़ूँगा, मेरे साथ क्या कोई जबरदस्ती कर सकता है? मैं अब ज्यादती नहीं बर्दाश्त करूँगा। हूँ हूँ! जब देखो तब—तू—तैं—चुप! गोया बेटा नहीं, ज़रख़रीद गुलाम हूँ।

"स्कूल नहीं, तो कचहरी चलो !" क्यो चलो ? मेरा सर घूमता है, मेरा दिल दुनिया के झंझटों के आगे बैठा-सा जाता है। मैं परीशानी नहीं चाहता, ऐसे ही मैं क्या कम परीशान हूँ। कोई क्या जानेगा कि मेरे कलेजे में कैसा कोलाहल है।

मगर नहीं, उनका दिया खाना जो खाता हूँ। बस, यही सबसे बड़ा गुनाह है मेरा। दुनिया मे अपना बाप भी किसी को नालायक जान लेने पर चुपचाप भोजन नहीं दे सकता। अच्छी बात है, मेरे भी दो हाथ हैं। मैं अपनी रोटी आज से खुद पैदा करूँगा। मैं कचहरी नहीं जाऊँग, रतनपुर का त्याग करूँगा।

मानिक इसी नशे में उसी वक्त चुपके से घर से बाहर हुआ। एक ओर चल पडा। मगर, रास्ते मे उसके मन ने दूसरे ही पहलू से तर्क-वितर्क आरम्भ किया। कहाँ जाऊँगा—कौनसी नौकरी करूँगा ? एन्ट्रेन्स फेलियर को, बड़ा भाग्य होगा तो, पन्द्रह—नहीं बीस, मासिक मिलेंगे। इतने से क्या होगा ? यही सोचता हुआ वह गोपाल के घर पर आया। उस समय गोपाल अपने सजे कमरे में कुशन कुर्सी पर बैठा चाय पी रहा था।

"आओ—आहा !—खूब आये।" गोपाल वछल

पडा—'धानू, धानू।" नौकर को पुकारा उसने—"बाबू के लिये भी चाय लाओ। वहाँ नहीं—वह, हाँ। उस कुर्सी को यहाँ घसीट लाओ, मेरे सामने। बैठो।"

मानिक जब बैठ गया तब मानो गोपाल की चचल आँखों ने उसके चेहरे पर उदासी और चिन्ता का विज्ञापन पढा। वह चमका मन-ही मन। दुनिया में उदासी कैसी? यहाँ कोई उदास क्यों होता है? फिर यह क्यो उदास है? इसको क्या कष्ट है? ओहो! हीरा

"तुम्हारे चेहरे पर उदासी और परीशानी क्यो बरस रही है उस्ताद? रात में हीरा मिली थी क्या?"

"अजी नहीं," मानिक ने खीझ से कहा—"हीरा मेरे भाग्य में कहाँ। यहाँ तो मिट्टी भी खराब हुई जा रही है।"

"क्यों, क्यों?"

"क्यो का उत्तर यही है कि मैं अब रतनपुर का त्याग करने जा रहा हूँ। मेरे घरवाले मुझे घर में नहीं रहने देना चाहते।"

"कौन नहीं रहने देना चाहता? ओहो! समझ गया। तुम अपने पिताजी से परीशान हो। सुना है, बडे तीखे मिजाज के हैं। मुझे तो उनकी बडी बडी आँखें बडी भयानक सी लगती हैं। एक दिन की बात है, मैं तुम्हारी तलाश में



तुम्हारे घर गया था। देखा दरवाजे ही पर बैठे वह हुक्का गड़गड़ा रहे थे। इस तरह घूरा उन्होंने मुझे कि मैं तो मन-ही-मन सिटपिटा सा गया। ऐसी लाल-लाल आँखें तो सारे रतनपुर में ढूँढने से न मिलेंगी। फिर मैं उलटे पाँवो लौट आया। किसकी हिम्मत ऐसी है जो उनसे कुछ पूछे जाँचे।"

"मैं तो हैरान हूँ उनसे।" आजिजी से मानिक ने कहा—"जब देखो तभी गुर्र गुर्र, काट काट। बाप रे! ऐसा तो डिस्ट्रिक्ट जेल का जेलर भी भयानक न होगा। मैं आज ही यहाँ से कहीं रफूचक्कर होता हूँ।"

"कहाँ, कहाँ जाओगे?" गोपाल ने दिल्लगी की—"मिहरबानी कर, थाना, पोस्ट-आफिस और जिले का पता मुझे देते जाना। शायद हुलिया कराना पड़े। क्योंकि, अपने बाप के तुम एक ही लायक हो, जैसे मैं। यह मैं जानता हूँ, मैं घर में आग भी लगा दूँ तब भी मेरे पिता मुझे घर के बाहर न जाने देंगे। हम सब उसी मे एक साथ ही जलेंगे। वैसे ही अपने अभिभावकों को भी समझो। यह दाँता किटकिट ऊपरी ही है। हृदय में सौ में निन्नानवे माता-पिता एकाकार होते हैं।"

"मगर मेरे पिता निन्नानवे पिताओं से भिन्न हैं, वही सौवाँ

पिता हैं जिन्हें तुम नहीं जानते। उनका दिल पत्थर का है, छाती फौलाद की। मैं मर भी जाऊं तो उन्हे ठेस नहीं लगेगी।"

"आखिर आज ही घर छोड़ने की समस्या क्यों खड़ी हुई ?"

"वे जबरदस्ती मुझे स्कूल भेजेंहीगे। मैं नहीं जाऊँगा तो कचहरी पकड़ ले जायँगे। मुख्तार हैं न। शायद कोई केस भी चला दें।"

गोपाल मानिक के व्यंग पर दिल खोलकर हँसा। इतना हँसा कि उसकी हँसी में मानिक की उदासी भी बह गई। वह भी अपनी उक्ति पर एक बार खिलखिला पड़ा।

"कहीं आने-जाने की जरूरत नहीं।" गोपाल ने सलाह दी—"मेरी तो पूरी राय है कि तुम स्कूल जाया करो। न जी लगे तो पढना नहीं, केवल बैठे रहना। हाकी, क्रिकेट और फुटबाल से मनोरञ्जन कर लेना।"

"मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं या तो कोई काम पूरे उत्साह से कर सकता हूँ या बिलकुल नहीं कर सकता। बीच का समझौता मेरी प्रकृति में नहीं है।"

"अच्छी बात है। मगर दूर भागने से फ़ायदा ? कुछ दिन मेरे बगीचे में चल कर टिको। वह यहाँ से दो कोस

दूर है। वहाँ मेरे पिता तो कभी जाते ही नहीं, हाँ कभी-कभी मौज-मजा के लिए मैं जाया करता हूँ। वहाँ पीने और प्यार करने की बड़ी सुविधा है।"

"सुविधा तो सच है," गौर से विचार करते हुए मानिक ने कहा—"मगर पैसे भी तो चाहिएँ? मेरे पास तो फूटी कौड़ी भी नहीं है। पछत्तर रुपये थे, जो परसों उस दावत में खर्च हो गये।"

"अहूँ," लापर्वाही से गोपाल ने कहा—"हफ्ते भर तक तो तुम्हारा स्वागत यह खाकसार ही करेगा। हर तरह से, नाच से, रग से, रँगीले रस से। इसके बाद एक तरकीब ऐसी है कि खुद तुम हजारों रुपये पा जाओ।"

"हजारों!" मानिक चमक उठा—"कैसे यार!"

"कोई मुश्किल नहीं," गोपाल बोला—"मैं एक ऐसे महाजन को जानता हूँ जो डेढ हजार लिखाकर हज़ार रुपये तुम्हें आधी रात को भी दे सकता है। क्योंकि तुम तो कई लाख के उत्तराधिकारी हो। जब तुम सम्पत्ति के मालिक होगे, आसानी से वह अपनी रकम वसूल कर लेगा। एक बार मेरे पिता ने भी मुझे तग किया था—पैसों के लिए। उस वक्त इसी युक्ति से मैंने काम लिया था। बाद में मेरे पिता को खबर हो गई। एक बार दस पाँच गालियाँ ज़रूर

उन्होंने दीं मुझे, मगर तुरन्त ही उसके रुपये अदा कर दिये और तब से बराबर मुझे ठीक तरह से खर्च देते हैं। अजी, दुनिया में सीधी अँगुली से घी तक नहीं निकलता।"

इस तरकीब को सुनकर मानिक का मूर्ख मन गोपाल की बुद्धिमानी पर लट्टू हो गया। आहा! क्या सीधी तरकीब है। वह कई लाख का उत्तराधिकारी आज नहीं तो कल होगा ही, फिर कष्ट क्यों उठावे? पिता कुढते हैं, कुढें। वह मौज करेगा। गोपाल के बगीचे में जरूर कुछ दिन टिकेगा और इसी युक्ति से अपना काम चलावेगा, जब उसके पिता सीधी तरह से नहीं देते, तो वह जैसे पा सकेगा—लेगा।

वह नहीं जायगा घर—हफ्ते-दो हफ्ते, महीने दो-महीने तक। जब तक गोपाल के पिता की तरह उसके क्रोधी बाप का पारा भी उचित स्थान पर न उतर आवे। वाह-वाह! गोपाल कितना बुद्धिमान है। उसने कैसी बढ़िया युक्ति उसे बताई है!

जरूर अब इसी तरकीब से वह अपना काम चलावेगा। भागे क्यों? दर दर ठोकर क्यों खावे?' वह तो लाखों का उत्तराधिकारी है। यह विशाल सम्पत्ति उसी के भोग के लिए तो है?

व्यग्र होकर रो तो अवश्य पड़ती, पर घबराती न। तुरन्त ही घड़ों पानी बाहर के कुएँ से काढ कर लाती, घटों तक बिस्तर की, कोठरी की, बे-होश पारस की दुर्गन्धि-मयी दाढ़ी और बिगड़े कपड़ों की सफाई करती—और बिना घिनाये या माथे पर शिकन डाले, प्रेम से, अपनत्व से।

अरे वह हँसती कैसी थी, उसकी मुस्कराहट के साथ दुर्भाग्यमय होने पर भी तमाम घर मुस्करा-सा उठता था। वह एक ही थी! पर पारस को उसका इतना सहारा था जितना किसी को करुणा-मयी माता का हो, सहानुभूतिमयी भार्या का हो, सेवक पुत्र का हो। आज जब वह नहीं रही, तब उनको पता चला गोया असली सर्वनाश उनका अब हुआ है। उनको घर का एक एक कोना चिढ़ाता सा, तीव्र भर्त्सना करता-सा दिखाई पड़ने लगा। बाहर सन्नसन्न हवा चल रही थी, हवा क्या छोटी आँधी चल रही थी, पारस को ऐसा लगा, गोया सारी प्रकृति उनके पापों के लिए उन्हें फिटकारने पर उतारू हो गई है। ओह! अन्धड़ का स्वर कैसा रूखा है!!

उन्हें ऐसी आहट लगी मानो बाहर धीमे-धीमे कोई चल रहा है। कौन चल रहा है? वह आई तो नहीं! हो सकता है, कल के मेरे दुर्व्यवहार से रुष्ट हो कर वह कहीं चली

गई हो और फिर कुछ सोच-समझ कर आई हो।

"बचिया! बची!!"

सहसा उनके मुँह से निकल गया। उत्तर में कोठरी की उपलप्राण धरनें पुकार उठीं—"बचिया! बची!!" बाहर से हवा ने सन्न-सन्न स्वर मे कहा—"बचिया! बची!!"

पारस समझ गये। वह उनका भ्रम-मात्र था। मगर, पाँवों की आहट किसकी थी? घर में दूसरा कौन है? "कौन है? कौन है?" उन्होंने पुन आवाज दी। धरनें पुन बोलीं—"कौन है? कौन है?" हवा पुन सनकी "कौन है? कौन है?" पारस का कलेजा काँपने लगा। उन्हें निश्चय हो गया कि उनके पाप प्रेत का रूप धरकर उन्हें हैरान करने आये हैं। बाहर घोर अन्धकार है, भीतर महा घोर! अ ह! इस घर में कोई कैसे रह सकता है?

धीरे-धीरे वह घर से बाहर की ओर निकले। चोरों की तरह अपनी ही पद-ध्वनि को दूसरे की समझते हुए अपनी ही साँसो को किसी विकट बेगाने की भय-भरी साँस समझते हुए।

गली मे सन्नाटा था। घर घर के दरवाजे बन्द थे। दूर से सियारों की श्मशान रागिनी सुनाई पड रही थी। मानो पारसनाथ के सर्वनाश के आँगन में अमङ्गल के गान गाये



जा रहे थे। गली मे उनकी गति तीव्र हो गई। उनका दिल ऐसे धडक रहा था मानो वह चोर हैं और उनका कोई पीछा कर रहा है। उनकी गति बढ़ी—और बढी। यहाँ तक कि थोड़ी ही देर में वह मुशीगज स्टेशनवाली सड़क पर दौड़ने लगे—बस्ती से स्टेशन की ओर।

कोई आधा मील दौडने के बाद उन्होने सोचा, आखिर वह जा कहाँ रहे हैं ? कहीं तो नहीं, उनके मन ने उत्तर दिया। पर कहीं जाना तो होगा ही। अब उस प्रेतावास—घर—में उनसे नहीं रहा जायगा। अब वह मुशीगज के सुखी और सौभाग्यशील समालोचकों को अपना अपमानित मुँह कदापि नहीं दिखा सकते। अब उनके दो ही निस्तारक हो सकते हैं—परदेश और भिक्षा।

मगर, सन्नाटी, काली रात मे वह प्रकाश कैसा ? उस आम की बगिया में किसके घर में दीपक जल रहा है ? बस्ती के अच्छे-अच्छे अमीर भी आधी रात के बाद अपने आवास में आलोक नहीं रखते। वह किस अमीर का घर है ?

पारस प्रकाश और बगिया की ओर देखने और सोचने लगे। धीरे-धीरे वह स्थान उन्हें परिचित सा लगा। आह ! वही तो कलवरिया है। वहीं बड़े-बड़े घड़ों और पीपों मे

वह चीज भरी है जिसने उनका सर्वनाश किया है। यहीं उनका विकट मित्र वह कलाल भी है जो उदारता से उनको पिलाता है, लापर्वाही से उधार देता है। जिसने हजारों के वसन-वासन बदले में लेकर उनके सर्वनाश के पथ के प्रदर्शक का काम किया है।

चारों ओर अँधेरा है, मगर वहाँ दीपक जल रहा है। देव मन्दिर के प्रकाश सरेशाम ही ठढे पड़ गये और शैतान के घर की रोशनी अभी तक चमक रही है, जल रही है। पारस के मन में पागलों का क्रोध जाग उठा, कलवरिया के विरुद्ध। वह घूँसा तानकर अपनी हथेली पर मारने और दाँत किटकिटाने लगे। बकने लगे—

"इसने ही मेरा सर्वनाश किया है। कितने घरों में अँधेरा—उफ मेरे भयानक घर के अन्धकार की तरह!—हो गया होगा, इस दानव प्रकाश के लिए। नाश हो इस दीपक का! और मेरे ही हाथों नाश हो!"

वह पुन दौडे, मगर स्टेशन की ओर नहीं, कलवरिया की ओर। जैसे एक ही साँस में वह उसके द्वार पर पहुँचे। उन्होंने देखा, द्वार भीतर से बन्द था। वह [प्रकाश उसके उस बड़े छिद्र से आ रहा था जिसे कलाल ने इसलिये दरवाजे मे बना रखा था कि रात बिराव में आनेवाले

पियक्कड़ विमुख न फिर जायँ। वह दूर ही से जानें कि प्रकाश है, कलाल जाग रहा है। यदि कदाचित् वह सो भी जाय तो परिचित आगन्तुकों को कोई बाधा न पड़े, इसलिये छिद्र इतना बड़ा बनाया गया था कि उसमें हाथ डालकर भीतर की सिटकिनी मजे में खोल दी जाय। अनेक बार इसी युक्ति से पिछली रातों में पारस ने स्वयं वहाँ पर मदिरा विलास किया था।

मगर, आज तो वह कुछ और ही करेंगे।

धीरे से दरवाजा खोल वह भीतर घुसे। चारों ओर सन्नाटा और दुर्गन्ध का राज्य था। कई पियक्कड़ जमीन या चटाई या नाबदान पर गाफिल पड़े अपनी नाकों से बेखबरी की भद्दी शहनाई बजा रहे थे। पूर्वी कोने की दालान में पत्थर का एक ऊँचा-सा चबूतरा था जिस पर कई घड़े ढँके रखे थे। आसपास अनेक बोतलें भी पड़ी थीं। वहीं एक चटाई पर गल्ले के सन्दूक पर तकिया किये कलाल बेखबर पड़ा था। उसकी आँखें अधखुली थीं, जैसे जागता हो। मगर नाक घोल रही थी। पारस समझ गये आज उसने भी गहरी पी है। कलाल के सरहाने दीवाल में बने मिट्टी के दीवट पर मिट्टी के बरतन में मीठे तेल की मोटी बत्ती जल रही थी। वह उसी ओर बढ़े।

उन्होंने उसी दीपक को कलवरिया के छाजन में छुला देने का निश्चय किया था।

मदिरा की महँक तीव्र थी। पन्द्रह बीस घंटे से चिन्ताओं से लड़ते लड़ते पारसनाथ का माथा थकित और पराजित सा हो रहा था। वह एक युग के पियक्कड़ थे। कलाल के और उन बड़े-बड़े घड़ों के पास जाते-जाते वह जैसे मन्त्रमुग्ध हो गये। वे घड़े, वे बोतलें, वह दुर्गन्ध मयी सुगन्ध उन्हें अपनी ओर खींचने लगी। एक ही क्षण मे वह भूल गये कि वह कलवरिया में आग लगाने आये थे। उनका गला सूखने लगा। उन्हें प्यास लग आई।

उन्होंने सोचा, आज से पीना तो छोड़ना ही है, फिर एक बार और क्यों न पी लूँ? कलाल सोया है, उसकी साँसें कह रही हैं कि वह आठ बजे सुबह तक करवट तक न बदल सकेगा। फिर कलवरिया में आग लगाने के पूर्व एक बार भर पेट और क्यों न पी लूँ? ओह! प्यास लगी है।

धीरे से एक बोतल खोल, उसे मुँह में लगा वह घट्, घट्, घट् करने लगे। बिना विराम और चखने के। दारू आग की लकीर की तरह उनकी छाती में पैठने लगी।

वह गये थे शैतान के घर में आग लगाने, मगर उसने क्षण भर में उन्हीं के घर में आग लगा दी! शैतान

भी, भगवान की तरह, उनके घर के एक एक कोने से परिचित था।

पन्नालाल की, कचहरी के कामों में, उस दिन तबीअत न लगी। न तो उत्साह से वह अपनी प्रिया पेया को पी सके और न मुकदमो में बहस ही कर सके। शाम को जब घर लौटे तो बराबर उसी वृद्ध देहाती और उसके शाप के बारे में सोचते हुए। उन्हे कुछ ऐसा विश्वास था कि देहात के लोग देखने ही में दरिद्र होते हैं, मगर उनके चीथड़ों के कोनों मे शहरी मुअक्किलों से कहीं अधिक रुपये बँधे होते हैं। ऐसा ही उस दिन उस बूढे गरीब के बारे में भी उन्होंने अन्दाज लगाया था। मगर आज उन्हें अपनी भूल मालूम हुई।

जीवन मे शायद पहली बार आज उन्हें अपनी अर्थ लोलुपता पर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा—ओह! जरा सा मेरे असन्तोष ने एक गरीब का सर्वनाश कर दिया। आखिर मुझे कमी ही क्या थी? मैं चाहूँ तो वरसों तक अमीर-गरीब सभी के मुकदमे बिना फ़ीस लिये और



बिना गाडी-भाडा लिये लड सकता हूँ। फिर भी कुछ रुपयों के लिये मैं वज्र की तरह कठोर होकर सभी मुश्किलों की विपत्ति मे महाविपत्ति बन जाया करता हूँ। उस दिन वह बेचारा कैसा गिडगिडा रहा था—और मैं किस तरह नफ़रत से उसकी दरिद्रता को झिड़क रहा था। अब मैं हज़ार चेष्टा करूँ तब भी उसके अभिशाप को लौटा नहीं सकता। उसके बेटे को फाँसी के तख्ते से बचा नहीं सकता। मुझमें प्रतिभा है, ठीक है, मैं शहर के सैकड़ों वकीलों से आगे रहनेवाला मुख्तार हूँ, ठीक है, मगर इसका अर्थ यह तो नहीं होना चाहिये कि मैं दानवों की तरह अपनी शक्ति का उपयोग औरों के रक्त शोषण ही के लिए करूँ। यदि आज मैं मर जाऊँ?

मर जाऊँ? पन्नालाल मन ही-मन मृत्यु की भावना से काँप उठे। वह ऐसे कायर कभी नहीं थे जैसे आज। उन्होंने सोचा लड़का इस तरह का आवारा हुआ जा रहा है। वह पैसे को पैसा और रुपयों को रुपया ही नहीं समझता। ऐसी हालत में मेरी मृत्यु का अर्थ सिवा मेरी सम्पत्ति के नाश के और क्या हो सकता है? कौन सम्पत्ति? वही जिसे मैंने गरीबों और अमीरों, भलों और बुरों को एक भाव से कटे नीबू की तरह गार गार कर एकत्र किया है। उसी सम्पत्ति

को मेरा मानिक मिट्टी की तरह, कूड़े की तरह अपने घर से फेंक देगा। सिगरेट और तम्बाकू की तरह जलाकर खाक कर डालेगा।

जब वह गाडी से अपने दरवाजे पर उतरने लगे, उन्हें शरीर में कुछ दर्द सा मालूम पडा। हाथ से माथे को जो स्पर्श किया तो वह गरम मालूम पडा। उन्हें ऐसा भासित हुआ जैसे ज्वराश हो।

घर में घुसते ही नौकर ने खबर दी, कई आदमी उनके आसरे में बैठे इन्तजार कर रहे हैं। कौन हैं? पूछने पर पता चला—वही वर देखनेवाले। वह बहुत खीझे उस समय उन वर देखनेवालों को उपस्थित सुनकर। अगर उनकी तबीअत ठीक होती, वह अपने स्वभाव में होते, तो अवश्य ही इस वक्त पुन नौकर पर दो-चार हाथ झाड़ते। इसलिए कि वह जानता है कि यह वक्त उनके आराम करने का है। फिर उसने उन मूर्खों को बैठने ही क्यों दिया?

"मानिक आया?" रूखे स्वर से पूछा उन्होंने नौकर से। उसने "नहीं, हुजूर! बहुत तलाश करने पर भी छोटे सरकार का कहीं पता नहीं चला।" उत्तर दिया। पन्नालाल को इस बार क्रोध नहीं आया, बल्कि वह सन्न-से रह गये। उन्हें मन-ही-मन पूरी आशा थी कि इस वक्त उनका लायक

घर पर मिलेगा। मगर अब तक वह नहीं आया यह बात उन्हें चिन्तामयी मालूम पड़ी। खैर, बैठक में वर देखनेवाले बैठे थे। पहले वह उन्हीं के पास गये।

"कहिये" रूखे स्वर से उन्होंने पूछा—"कैसे आगमन हुआ ?"

"हमने," लड़की का पिता बोला "बहुत ढूँढ-ढाँढ और सोच समझ कर अन्त में आप ही की शरण में आने का विचार पक्का किया है। चार हजार मेरे लिये बहुत हैं, फिर भी हम हाजिर हैं। हम आप ही के यहाँ सबन्ध करेंगे। आप थके हैं, कचहरी से परीशान आ रहे हैं, यह हमें मालूम है। अत आज आप एक दिन निश्चित कर दें जब हम आने और आरम्भिक रस्में पूरी कर दें।"

"हा हा हा हा।" रुखाई से हँसकर पन्नालाल ने कहा "बेशक आप लोग अच्छे असामी हैं, मगर यह आपको मालूम है या नहीं कि मेरा लड़का आवारा है ?"

"आवारा है!" मजाक समझकर लड़की के बाप ने अविश्वास प्रकट किया "ऐसा नहीं हो सकता। गुलाब के पेड में भटकटैया का फूल नहीं लग सकता। कृपा कर अब हमें टालिये नहीं। हमने तो निवेदन कर दिया कि हम हर तरह से आपकी सेवा में हाजिर हैं।"



पन्नालाल ने टोपी उतारकर लापर्वाही से जमीन पर फेंक दी। नौकर को अपनी देह पर से कोट उतारने का इशारा किया और फिर लस्त पस्त से आराम-कुर्सी पर पड़ रहे।

"क्षमा कीजिये," नम्रता से वह बोले—"आज मेरा जी ठीक नहीं है। मगर, ठीक होने पर भी मैं अपने लड़के का ब्याह न करता। जब मैं, उसका बाप, स्वय समझता हूँ कि वह आपकी लड़की को इज्जत और शान्ति से न रख सकेगा तब किसी तरह भी उसकी शादी नहीं कर सकता। आप विश्वास मानिये, मेरा पुत्र मेरा सर्वनाश करने के लिए पैदा हुआ है। मैं पहले इस बात को नहीं जानता था, पर जीवन में अक्सर ऐसे नीरस और कठोर सत्य अनायास ही हमारी आँखों के आगे आते हैं। मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि इनसे सावधान होकर लाभ उठाये, साधारण मोहों से बच कर। अब इस विषय में अधिक बातें व्यर्थ होंगी। मैं जब तक उसे उसकी स्त्री के योग्य नहीं समझता, अपनी जानकारी में उसका ब्याह कदापि न होने दूँगा।"

लाचार बेचारे लड़कीवाले लौट गये। मन ही मन पन्नालाल के निश्चय पर पछताते हुए। [illegible] विशाल सम्पत्ति के लिए उनके मन में बड़ा [illegible] लड़की-

वाले को इतनी बड़ी सम्पत्ति का एकाधिकारी वर नसीब होता है। लड़का आवारा है तो यह कौन-सी बड़ी बात है। इस उम्र में तो अक्सर अमीरों के लड़के कुछ मनचले हो जाते हैं। मगर इसके लिए उनका ब्याह तो रुकता नहीं। बल्कि, लोग शीघ्रता से ऐसे आवारों को दुनिया के बन्धन में बाँधकर वश में करने की कोशिश करते हैं। मगर पन्नालाल के निश्चय के आगे कोई क्या करे।

नौकर तम्बाकू भर कर पन्नालाल के सामने रख गया, पर उस ओर उन्होंने ध्यान भी नहीं दिया। वह आँखें बन्द किये पड़े रहे। नौकर समझ गया, आज मालिक का मिजाज ठिकाने नहीं है। उसने फौरन घर में मालकिन को सूचना दी वह तुरन्त ही बैठक में आई।

"यहाँ पड़ कैसे गये ?" धीरे से मानिक की माँ ने दरियाफ्त किया, "हाथ मुँह नहीं धोओगे ? कैसी तबीअत है ?"

एक बार आँखें खोलकर पन्नालाल ने पत्नी की ओर देखा और पुन पूर्ववत् पड़े रहे। उनसे कुछ बोला न गया। अनेक भाव उनकी छाती में तूफान की तरह हाहाकार कर रहे थे। पत्नी ने उनके माथे पर हाथ रखा, वह झिझककर पीछे हट आई।

"हे भगवान्। तुम्हें तो आग की तरह बुखार लगा है।

माथा तवे-सा जल रहा है। अरे, अरे! कहाँ गया? जरा किसी हकीम या डाक्टर को तो बुला ला। हे राम! इन्हें क्या हो गया है। सुबह से ही 'उसका' पता नहीं और इस वक्त इनकी यह हालत।"

हकीम के आते-आते पन्नालाल का ज्वर साधारण से असाधारण हो गया। उन्होंने आकर इन्हे पलङ्ग पर लिटाया और रात-भर कोई दवा न देने की सलाह दी। रात भर मानिक की माँ, घर की महरी और नौकर पन्ना लाल के पलग के पास जागते बैठे रहे। उनका ज्वर जरा भी न कमा। वह बराबर मानिक का नाम ले लेकर ज्वरावेश में बर्राते रहे। कहते रहे—"तू मेरा सर्वनाश कर देगा। मैं तुझे एक कौड़ी भी न दूँगा। देखूँ तो तू कैसे आवारगी करता है। अरे आवारे! कमा कर बदमाशी कर बाप दादों की कमाई पर गुलछर्रे उडाना शराफत नहीं कमीनापन है। मैं इसके लिए तुझपर मुकद्दमा तक चला सकता हूँ। हूँ—हूँ बच्चू! मैं बडा नीरस और अपने सिद्धान्त का पक्का आदमी हूँ।"

सुबह हकीमजी ने देखा, मुख्तार पन्नालाल के सारे शरीर में बडे-बडे लाल-लाल दाने फूट निकले थे।

उन्होंने बताया, शराब की जो गर्मी इनकी देह में इकट्ठी

हो गई थी, वही चेचक के रूप में फूट पडी है। भयानक, घातक, चेचक !

"मगर, कोई चिन्ताकी बात नहीं।"

हीरा तेरह महीने बाद ससुराल से रतनपुर लौटी थी। गौने के ६ महीने बाद भी एक सायत पड रही थी और हीरा के पिता उसी समय उसे लिवा लाने को तैयार भी थे, पर गरीबी बुरी होती है। उन बेचारो के पास इतने पैसे ही नहीं एकत्र हो सके कि वह लडकी को लिवा लाने की हिम्मत करते। तब तक वह हीरा के ब्याह-व्यय के धक्के से ही नहीं सम्हल सके थे। इसके बाद पण्डितों ने न जाने क्या देखा पत्रा में कि, पूरे सात महीने तक दूसरी सायत नहीं सधी।

हीरा की माँ बहुत रोई गिडगिडाई कि, "दुपद्दी" की तरह कोई आपद्कालिक सायत साधकर लडकी बुला ली जाय। नहीं तो, उसे वहाँ बेगानों के बीच में बड़ी तकलीफ होगी। उसका नन्हासा मुँह कुम्हला जायगा। साथही लोक निन्दा की चिन्ता भी उसे कम नहीं थी। मुहल्लेवालों ने कानोकान फुसफुसाना आरम्भ कर दिया था—"बाबा रे !



एक बार जो बेचारी गई तो फिर नैहर का मुँह देखना नसीब न हुआ। हे परमात्मा, गरीबी किसी को न दो। इस के मारे बेटी-बेटे भी तीन-तेरह हो जाते हैं।" लोगों की इस क्रूर सहानुभूति का भी हीरा की माँ पर बड़ा प्रभाव पड़ता था।

मगर उसके पिता तो माँ नहीं थे। वह उतने दिनों में दो बार स्वयं उसको देखने रामपुर गये, दो बार पुष्प-पत्रम् के साथ नाई को भेजा। मगर लड़की बुलाया तेरह महीने बाद ही। रामपुर में जब पिता के पैर पकड़कर हीरा रोने लगती—"बाबा, मैं यहाँ मरी जा रही हूँ। मुझे खाने या पीने की तकलीफ नहीं, मगर न जाने क्यों मेरा मन यहाँ से भागता है। ऐसा लगता है गोया कैदखाने में पड़ी हूँ।" तब वह उसे समझाते-बुझाते—"बेटी, अब भागने से रामपुर तो छूट न सकेगा। मुझे तो यहाँ कोई भी ऐसी बात नहीं दिखाई पड़ती जिससे तुझे असुविधा हो। पगली, मुहल्ले की सभी लड़कियों से तेरी ससुराल अधिक पैसेवाली है। सबसे हिल-मिलकर रह, यही औरतों की शोभा है। बस इस बार वसन्त आया कि मैं तुझे विदा करा ले गया।"

हीरा बेचारी विवश चुप रहती। माँ उसके सामने होतीं तो अवश्य ही वह उसे कुछ ऐसी भेद-भरी बातें अपने असन्तोष के बारे में बताती कि वह दंग रह जाती। मगर

पिता से वह क्या कहती ? कैसे कहती ? अत उतने दिनों तक उसे झेलना ही पडा।

रतनपुर आनेपर एक बार पुन मुहल्ले की लुगाइयों की भीड़ उसे देखने को टूट पडी। किसी ने यह देखा कि मोटी ताजी है या नहीं, पर उसे दुबली देखकर वह निराश हो गयी, अपनी किसी प्रेमिनी से बोली "जान पडता है ससुरालवाले पूरे सोंठ हैं। न तो पेटभर खाते हैं और न तनभर पहनते हैं। देखो न यहाँ से हीरा कैसी तगडी तैयार गई थी, जैसे बाघिन। कैसी सूखकर लौटी है, जैसे छोहारा।" उसकी सखी ने समर्थन किया "ठीक कहती हो बहन। जरूर वहाँवाले इसे कष्ट देते होंगे। अरे गरीब की बेटी की ससुराल में भी पूछ नहीं होती। बात-बात में ताने मिलते हैं।"

किसी ने उसके तनपर कम गहने देखकर उसकी माँ से दरियाफ्त किया, मामला क्या है ? हीरा के सब नग-नगीने क्या हुए जो विवाह पर उधरवाले लाये थे ? उसकी माँ ने उत्तर दिया "हीरा के बाबा ने उसके गहने वहीं रख दिये हैं। यहाँ लाना जोखिम मोल लेना था बहन। हम गरीब ठहरे, उनमें से एक मुँदरी भी इधर से उधर हो जाती तो कन्या का धन हम कहाँ से पूरा करते। दुनिया नाज़ुक है।"

बेशक हीरा मुर्झायी और उदास आयी थी ससुराल से, लेकिन रतनपुर में पाँव धरते ही उसकी शिथिलता अन्तर्धान

हो गयी। रामपुर में बराबर एक ही मकान में बन्द-बन्द रहने से उसके हृदय का सारा उत्साह जैसे सूखकर पीला पड गया था। यहाँ की मुक्त वायु में साँस लेकर वह पुन हरी हो चली। तीन चार दिन तो वह मारे संकोच के, इच्छा रहते हुए भी, घर के बाहर न निकल सकी। मगर, एक दिन सन्ध्या को जब उसके बाबा किसी काम से कहीं चले गये, वह घर के बाहरी दरवाजे पर आयी। उसी दरवाजे पर जिसे जरा सा खोलकर वह गौना के पहले अपनी बडी बडी आँखों से किसी को देखा करती थी। अब साल भर बाद उस स्थान पर पहुँचकर वह कण्टकित हो उठी, उसकी आँखों में स्नेह की फूहियाँ ताकने लगीं।

उसने देखा सामने पडोसी का घर सूनसान था। दरवाजा भीतर से बन्द था। उस बैठक की खिरकियाँ भी बन्द थीं जिसमें बैठकर मानिक उसकी आँखों को आँखों से ढूँढा करता था। खिरकियों के बन्द दरवाजों पर मकडियों ने अनेक जाले तान रक्खे थे और जब हीरा की नजर पडी उस समय भी वे अपनी दुनिया के नये-नये ताने-बाने में तेजी से मशगूल थीं। हीरा को मानिक के द्वार का यह दृश्य मन ही मन कुछ असगुन सा मालूम पड़ा। वह सोचने लगी, इधर सन्नाटा क्यों है? मुझे चार पाँच दिन यहाँ आये हुए, मगर अभी तक मानिक की मां मेरे घर पर क्यों

नहीं आयी ?

उसके मन में ऐसी कुछ उत्सुकता जागी कि उसने उसी वक्त अपनी माँ से मानिक और उसके परिवार के बारे में कुछ पूछने का इरादा किया। वह दरवाजे लगाने के लिए तैयार भी हुई। मगर इसी समय मानिक के दरवाजे पर एक पालकी गाडी आकर खडी हो गयी। हीरा उससे उतरनेवालों को देखने के लिए रुक गयी।

उसने देखा गाडी से एक काला साहब उतरा जिसकी मूछें मुडी थीं, पेट जरा भारी था और हाथ में लिपटे हुए रबड की नलियाँ थीं। वह पहचान न सकी उस व्यक्ति को, क्योंकि वैसे आदमी को मानिक के घर में आते-जाते उसने कभी देखा ही नहीं था। साहब के पीछे एक मेम भी घर में घुसी जिसके हाथ में चमडे का छोटा सा बक्स था और माथे पर टोपी की जगह पर सुफैद रुमाल बँधा था।

"माँ !" घर में लौटकर उसने दरियाफ्त किया "सामने वाले कैसे हैं ? उनमें से कोई दिखाई नहीं पडता।"

"अरी बेटी !" हीरा की माँ ने उत्तर दिया "मानिक के घर की हालत न पूछ। सब चौपट हो गया।"

"चौपट हो गया !" हीरा माँ का मुँह निहारने लगी, ताज्जुब से, उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ।

"हाँ बिटिया !" वह बताने लगी—"सारी गृहस्थी नष्ट

हुई जा रही है, एक तरह से हो गयी है। भगवान सात मुद्दई को भी कुपूत न दे। यह सब उस मानिक ने चौका लगाया है।"

"कैसे माँ ? कैसे माँ ??" शंका से साँवली होकर हीरा ने, माँ के अधिक सन्निकट होकर पूछा।

"अरे वह आवारा हो गया। तू जब रामपुर गई उसके दूसरे या तीसरे महीने ही से उसके रंग ढंग बदलने लगे। वह दिन-दिन रात-रात भर घर से गायब रहने और लुंगाडों के साथ छैलचिकनियाँ बना फिरने लगा। बडी बडी शिकायतें उसकी चारो ओर फैली हुई हैं।"

"वह क्या घर में आजकल भी नहीं है ? अभी मैंने झाँककर देखा, उनके दरवाजे पर जैसे प्रेत नाचते हों।"

"अरे उसका बाप बीमार है न। तीन महीने से। और इतने ही दिनों से वह घर से, नगर से, गायब है। कहीं पता ही नहीं चलता।"

'खोज तो बहुत हुई होगी—उनकी।"

"अरी बेटी!" दुख से उसकी माँ ने कहा—"एक महीना तक तो पन्नालाल की ऐसी बुरी दशा थी कि देखनेवालोंके होश उड जाते थे। उन्हें माता निकली थीं—बडी। सारी देह उनकी सड गई थी। उस वक्त किसे इतनी फुर्सत

थी कि मानिक को ढूंढता। उसकी महतारी बेचारी चारों ओर के दुखों से पगली-सी हो गयी है।"

मानिक-परिवार की दुर्गति की कथा सुनकर हीरा की आँखें छलक आयीं।

"लोग कहते हैं," उसकी माँ बोली—"दस हजार रुपये खर्च होने पर पन्नालाला की जान शीतला से बची है। बड़े बड़े, और कलकत्ता तक से डाक्टर आये थे।"

"अब भी डाक्टर आते हैं?" हीरा ने पूछा।

"आवेंगे न तो क्या करेंगे। जिसके घर में दुर्भाग्य आता है उसके यहाँ इन्हीं की तो भीड़ होती है। वह बेचारे जब चेचक से बचे तब उन्हें पक्षाघात हो गया है। अब उनके बचने की कोई आशा नहीं। पानी की तरह रुपये बहाये जा रहे हैं। अदालत की आमदनी तो पन्नालाल की बीमारी के साथ-साथ बन्द ही है, जमीन्दारी का काम भी चौपट हुआ जा रहा है। जो जहाँ ही है, लूट खसोट रहा है। मानिक के मामा आजकल घर का काम देखते हैं। और उस लड़के का कहीं पता ही नहीं है। सुना है उसके नाम अखबारों में घर लौट आने के लिए चिट्ठियाँ छपाई गयी हैं। सुना है।"

"क्या सुना है माँ!"

"सुना है वह बबई में है, सुना है वह नैनीताल में है।

एक की जगह दो और चार लिखकर वह रुपये कर्ज लेता है और पीता है, दुराचार करता है। आह! मुझे जब उसकी माँ के दुख का ध्यान आता है, मेरी छाती फटने लगती है। हे भगवान!"

मगर हीरा ने अपनी माँ की अन्तिम बातें सुनी ही नहीं। एक ही साल में मानिक में और उसकी फूलती-फलती गृहस्थी में सर्वनाश ने जो परिवर्त्तन कर दिया उसकी कहानी से हीरा के अनेक मधुर सपने बिखर गये। जैसे अन्धड़ में भुस का ढेर।

वह दीवार से टिककर, नीचे सर झुकाये, न जानें क्या-क्या सोचने लगी। उसका माथा चक्कर खाने लगा। सज्ञा शिथिल होने लगी।

पन्नालाल की परिचर्य्या के लिए शहर के डाक्टरों के इच्छानुसार दो ईसाइन नर्सें रखी गयी थीं। दिन और रात के चौबीस घंटों में बारी-बारी से उनके पास रहकर वही उनकी सेवा-सुश्रूषा करती थीं। उनकी पत्नी को उनके सामने जाने से भी डाक्टरों ने मना कर रखा था। क्योंकि उन्हें देखते

ही वह न जाने क्या क्या बकने-झकने लगते। कहने लगते कि उन्हीं के अपराध अर्थात् पुत्र दुलार से, आज उनकी गृहस्थी में आग लग गई है। उन्हींने उनके लडके को चौपट कर डाला है।

वेचक से सचमुच पन्नालाल अच्छे हो गये थे, यहाँ तक कि उनकी नसों में शुद्ध रक्त दौडने लगा था, उनके चेहरे का रंग लौटा आ रहा था, बकने-झकने की आदत कम हो रही थी। मगर, एक दिन, डाक्टरों की अनुपस्थिति में, उन्होंने नौकर से जबरदस्ती थोडी शराब माँगकर पी ली। जिसके लिए डाक्टरों ने हजार बार मना कर रखा था। बस वही शराब उनके लिए विष की घूँट बन गयी। शरीर का ताप एकाएक ऊँचा हो गया, प्रलाप बढ गया और पुन डाक्टरों के सँभालते-न-सँभालते उन्हें पक्षाघात हो गया। दाहना गाल, हाथ, पाँव सब सूने हो गये।

इसीलिये इस बार नर्सों की नियुक्ति की अधिक आवश्यकता हुई, जिसमें अब उनसे कोई कुपथ्य न हो जाय। उनकी पत्नी दो तीन बार अवश्य उनके सामने आतीं, वह बुलाते, मगर नर्सों के आदेशानुसार वह बेचारी हमेशा मौन ही रहतीं। जब पन्नालाल आवेश में बकने लगते, तब नर्सें उन्हें स्वास्थ्य की दुहाई देकर शान्त करतीं।

पन्नालाल अपने बडे बैठकखाने में साफ पलँग पर पडे थे।

उनकी एक ओर स्टूल पर पात्र में स्वच्छ जल, साबुन और तौलिया रखा था, दूसरी ओर मेज़पर औषधियों की अनेक छोटी-बडी शीशियाँ। पताने की ओर एक कुर्सी पर नर्स बैठी उनकी एक-एक साँस को परख रही थी। दरवाजे के पास उदास नौकर उपस्थित था कोई भी आज्ञा पाते ही इधर या उधर दौड़ने के लिए। पन्नालाल आँखें बन्द किये पडे थे। मानों झपकी ले रहे हों। उनकी हाथी-सी देह बिलकुल गल गयी थी, चेहरा निस्तेज और भयप्रद हो गया था।

"मोती!" एकाएक करवट बदलकर उन्होंने धीरे से आवाज दी। नर्स बढी उनकी ओर।

"कहिये," धीरे से उसने उनकी इच्छा की जिज्ञासा की।

"मोतीलाल कहाँ हैं?" मोतीलाल पन्नालाल के साले का नाम था।

"वह तो उसे बुलाने न गये हैं, आप ही ने तो परसों उन्हे नैनीताल भेजा था।"

"मैंने भेजा था?" किञ्चित आश्चर्य से पन्नालाल ने चित होने की चेष्टा करते हुए पूछा—"नहीं मेम साहब, मैंने भेजा था। भाड़ में जाय वह नालायक लड़का, मैं उसे लगा। आप क्या समझती हैं कि मैं उसको का अधिकारी बनाऊँगा? कदापि नहीं,

कदापि नहीं। चोर लूटके ले जायँ मेरे तोड़ों को, असामी खा जायँ खेतों को, सूद पर बहाये हुए तमाम रुपये डूब जायँ—आग लग जाय, नाश हो जाय, यह सब मुझको मजूर है, मगर, उस पाजी को मैं एक पाई नहीं देना चाहता। एक छंमी कौड़ी नहीं।"

नर्स ने इशारे से उनको शान्त होने को कहा।

"उफ!" बेचैन होकर वह बोले "अब मेरी जबान नहीं रुक सकती मेम साहब! वह शान्त तो होगी ही, मगर तभी जब मैं परम-शान्ति की गोद में शान्ति लाभ करूँगा। जीते जी यह पुत्र की कलक मेरे कलेजे के बाहर नहीं हो सकती। अरे मैं उसका बाप हूँ, मैंने जो कुछ कमाया-धमाया है, सब उसी के लिए तो। लोग और किसके लिए इतनी हाय हाय करते हैं। मगर देखती हो, उसने कैसा तिरस्कार किया है मेरा। मैं मर रहा हूँ, वह मौज कर रहा है। कर्ज-पर-क़र्ज लेकर मेरी गाढ़ी कमाई को स्वाहा कर रहा है। जब उसको मेरी सेवा और देख-रेख करनी थी तब वह बबई और नैनी ताल के होटलों में वेश्याओं के साथ भोग विलास कर रहा है। वह मेरा अपना है? आत्मज है? ना, ना, वह मेरा कोई नहीं है। वह मेरा पाप है, कलङ्क है।"

इसी समय उनकी पत्नी कमरे में आई—डबडबाई हुई। उन्हें देखते ही जैसे पन्नालाल पागल हो गये।

उनकी एक ओर स्टूल पर पात्र में स्वच्छ जल, साबुन और तौलिया रखा था, दूसरी ओर मेज़पर औषधियों की अनेक छोटी-बड़ी शीशियाँ। पाताने की ओर एक कुर्सी पर नर्स बैठी उनकी एक-एक साँस को परख रही थी। दरवाजे के पास उदास नौकर उपस्थित था कोई भी आज्ञा पाते ही इधर या उधर दौड़ने के लिए। पन्नालाल आँखें बन्द किये पड़े थे। मानों झपकी ले रहे हो। उनकी हाथी-सी देह बिलकुल गल गयी थी, चेहरा निस्तेज और भयप्रद हो गया था।

"मोती!" एकाएक करवट बदलकर उन्होंने धीरे से आवाज दी। नर्स बढ़ी उनकी ओर।

"कहिये," धीरे से उसने उनकी इच्छा की जिज्ञासा की।

"मोतीलाल कहाँ हैं?" मोतीलाल पन्नालाल के साले का नाम था।

"वह तो उसे बुलाने न गये हैं, आप ही ने तो परसों उन्हें नैनीताल भेजा था।"

"मैंने भेजा था?" किञ्चित आश्चर्य से पन्नालाल ने चित होने की चेष्टा करते हुए पूछा—"नहीं मेम साहब, मैंने नहीं भेजा था। भाड़ में जाय वह नालायक लडका, मैं उसे क्यों बुलवाने लगा। आप क्या समझती हैं कि मैं उसको अपनी सम्पत्ति का अधिकारी बनाऊँगा? कदापि नहीं,

कदापि नहीं। चोर लूटके ले जायँ मेरे तोड़ों को, असामी खा जायँ खेतों को, सूद पर बढ़ाये हुए तमाम रुपये डूब जायँ—आग लग जाय, नाश हो जाय, यह सब मुझको मंजूर है, मगर, उस पाजी को मैं एक पाई नहीं देना चाहता। एक झमी कौड़ी नहीं।"

नर्स ने इशारे से उनको शान्त होने को कहा।

"उफ!" बेचैन होकर वह बोले "अब मेरी जबान नहीं रुक सकती मेम साहब! वह शान्त तो होगी ही, मगर तभी जब मैं परम-शान्ति की गोद में शान्ति लाभ करूँगा। जीते जी यह पुत्र की कलक मेरे कलेजे के बाहर नहीं हो सकती। अरे मैं उसका बाप हूँ, मैंने जो कुछ कमाया-धमाया है, सब उसी के लिए तो! लोग और किसके लिए इतनी हाय हाय करते हैं। मगर देखती हो, उसने कैसा तिरस्कार किया है मेरा। मैं मर रहा हूँ, वह मौज कर रहा है। कर्ज-पर-कर्ज लेकर मेरी गाढी कमाई को स्वाहा कर रहा है। जब उसको मेरी सेवा और देख-रेख करनी थी तब वह बंबई और नैनीताल के होटलों में वेश्याओं के साथ भोग विलास कर रहा है। वह मेरा अपना है? आत्मज है? ना, ना, यह मेरा कोई नहीं है। वह मेरा पाप है, कलक है।"

इसी समय उनकी पत्नी कमरे में आई—डबडबाई

"उसकी माँ! हे उसकी माँ! लो अब उसका प्यार करो और उसी प्यार से अपने सर्वस्व का नाश करो! वह तुम्हारे माथे में क्या चमक रहा है ? सिन्दूर! हा हा हा हा! क्या तुम अभी तक अपने को सोहागिन समझती हो? नहीं उसकी माँ! अब जैसे मेरा पुत्र मर गया वैसे ही तुम्हारा पति भी मर गया है। यह मेरी परछाहीं बातें कर रही है। मेरा तो बेडा पार हो गया है।"

मानिक की माँ फूट-फूटकर रोने लगीं। नर्स उन्हे चुपाने को बढी—"आप यहाँ क्यो आयीं? क्या जानबूझ कर रोगी की तकलीफ बढाइयेगा?"

"नहीं, नहीं," वह बेचारी बोलीं "मैं तो यही कहने आई थी कि वह आ गया है।"

"कौन आ गया है? मानिक! मानिक? अरे जरा मेरे आगे तो आ! जरा मैं तेरे विलासी बदन को विलोकूं। कहाँ है मेरे लाडले?"

मोतीलाल के पीछे मानिक कमरे में आया। नर्स इशारे से भीतर आने को मना ही कर रही थी, पर वे आ ही गये। पन्नालाल की आँख पुत्र पर पड़ी, देखा लड़का दुबला हो गया है। आँखें धँस गई हैं। चेहरे पर की सरल सात्विकता का उत्साह गायब हो गया है। वह अधिक देर तक

उसकी ओर न देख सके। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं, और तर-तर आँसू बहाने लगे बच्चों की तरह।

मानिक भी उस नज्जारे को नहीं बरदाश्त कर सका। पिघल पड़ा। पिता के पताने बैठकर सिसकने लगा। उस समय उस कमरे मे जो जो थे सबकी आँखें भीग गयीं। किसी के मुख से एक शब्द भी न निकल सका। मगर अधिक समय तक वह अवस्था न रह सकी। नौकर ने डाक्टर के आने की सूचना दी। नर्स ने फौरन सबको कमरे के बाहर जाने को कहा।

कमरे के बाहर आकर मानिक ने देखा दालान में हीरा के पिता एक मुच्छाडिया—अधेड़ से—जवान के साथ खड़े थे। मानिक ने उन्हें प्रणाम किया।

"जीते रहो बेटा!" हीरा के पिता ने कहा—"कब आये हो भैया? ओह! तुम्हारे बिना सारा घर अँधेरा हो गया था।"

मगर मानिक की नजर उस दूसरे व्यक्ति पर थी। उसने हीरा के पिता से उसका परिचय पूछा।

"यही मेरे रामपुरवाले दामाद हैं बेटा!" हीरा के पिता ने बताया—"बीस-पचीस दिनों से हीरा आयी है न। मगर, यह उसे लिवाने के लिए अभी से आ गये हैं।"

"आप लोग इधर इस कोठरी मे आकर बैठिये," मानिक



ने कहा—"जरा डाक्टर देखकर चले जायँ तब पिताजी के पास जाइयेगा।"

"तुम इन्हे लिवा जाओ, बातें करो।" हीरा के पिता ने उत्तर दिया—"मैं तब तक तुम्हारी माँ से बातें करता हूँ।"

हीरा के पति के नाम ही से मानिक के मन में अनेक भाव उथल-पुथल कर उठे। उसने बार-बार उसके मुँह की ओर देखा। जैसे, हीरा ऐसी युवती के लिए यही वर था? उसके मन में उससे अधिक बातें करने की लालसा नाचने लगी। वह जानना चाहता था कि हीरा उसको कैसी लगती है, उनमें कैसी पटती है। हीरा आई है, यह सवाद पाकर वह अपने पिता की सारी कष्ट-कथाओं को भूल-सा गया। वह बिलकुल उच्छृङ्खल, उन्मत्त हो गया था।

दो-तीन दिनों तक मानिक और हीरा के पति मिलते और घुल-घुलकर बातें करते रहे। पिता की बीमारी और लोक-लाज की वजह से उन दिनों मानिक बराबर घर ही पर रहता। हीरा का घर तो सामने ही था। अत अक्सर वे एक साथ ही, उसी सामनेवाले बैठक में बैठकर दुनियाँ भर की बातें करते। एक दिन मानिक ने उससे पूछा—

"क्या विवाह हो जानेपर एक ही स्त्री से मनको सन्तोष हो जाता है? मेरी तो शादी ही नहीं हुई है, पर मेरा विश्वास है, दिलदार आदमी के लिए एक क्या अनेक

औरतें भी काफ़ी नहीं होतीं। तुम अपना तजरबा बताओ।"

"मेरा तजरबा," वह बोला "कोई नया नहीं। तुम्हारे मुहल्ले में मेरी दूसरी शादी हुई है, मगर, मुझे उससे सन्तोष नहीं। कुछ तो इसलिए कि बीबी रतनपुर की हैं, और क़सम खाकर कह सकता हूँ कि मेरा अनुभव यहाँ वाली औरत का बहुत बुरा है। यहाँ का पानी ही कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि औरतें जल्दी काबू में नहीं आतीं। मैं झूठ नहीं कहता, रामपुर के बाजार में घूमता हूँ।"

"हूँ॰" मानिक ने सोचते हुए पूछा—"कभी रतनपुर के बाजार में भी घूमे हो?"

"नहीं तो," उसने उत्तर दिया "यहाँ सकुशल कैसे घूम सकता हूँ। ससुराल है कि ठट्ठा। तुम्हारे पिताजी की हालत ठीक नहीं, नहीं तो तुम्हीं से कहता कि एक दिन कहीं लिवा चलो।"

"अजी", मानिक बोला "पिताजी की मुझे वैसी चिन्ता नहीं। मैं उनकी क्या फ़िक्र करूँ। मैं डाक्टर नहीं, हकीम नहीं, वैद्य नहीं। जो डाक्टर या हकीम हैं वह उनकी फ़िक्र में लगे ही हैं।"

"तुमने देखा है यहाँ का बाजार।"

"ठीक तरह से नहीं। बाजार में जाकर नहीं। बागीचे में बुलाकर कुछ सूरतें देखी हैं जो दिलचस्तगी के लिए वैसी

बुरी नहीं है। तुम यहाँ ससुराल होने से डरते हो, मैं बाप का घर होने से। मगर अब मुझे वैसा भय नहीं, अब मेरी हिम्मत खुल गयी है। इस लाइन में सब से जरूरी बात है हिम्मत का खुलना।"

"तो एक दिन चलो न।"

"हाँ, हाँ।"

"कब ?"

"आज ही ।"

"अरे तुम्हारे पिता ।"

"उहूँ। दो दिनो से उनकी हालत अच्छी है। मुझे उनकी चिन्ता नहीं। धीरे से साढे आठ बजे रात में चला जाय और दस-साढे दस तक लौट आया जायगा। कोई कुछ भी न ताड सकेगा।"

"मैंने सुना है," हीरा के पति ने कहा—"यहाँ जवाहर नाम की कोई बहुत मशहूर परी है, तुमने देखा है उसे ?"

"मैंने भी सुना ही है और यह भी सुना है कि उसके लिए अनेक आशिक मिजाज तबाह हो गये हैं। उसकी बड़ी पूछ और फीस है। उसी के यहाँ चलोगे ?

"मेरी तो यही राय है। मैं शिवरात्रि के एक दिन पहले यहाँ आया था। शिवरात्रि के दिन नर्मदेश्वर के मन्दिर में

जब दर्शन करने गया था तब उसकी भी एक झाँकी देखी थी। सच कहता हूँ यार, अजब है, गज़ब है।"

"तब उसी के यहाँ चलो आज।"

"इस वार्तालाप के ठीक दूसरे दिन, सवेरे, शहर में ज़ोरों से चर्चा फैली कि जवाहर के घर पर रतनपुर के महाजन लखरामदास के आवारे लड़के की पिस्तौल से एक युवक घायल होकर सरकारी अस्पताल में पड़ा है। लखरामदास के पुत्र ने भी शहर के बाहर नवाबी खँडहर मे गोली मार कर आत्महत्या कर ली है।

जब दूसरे दिन पन्नालाल को उनकी व्यथित पत्नी ने यह सवाद सुनाया कि घायल होने वाला युवक उनका प्यारा मानिक है, और मरने वाला, हीरा का पति, तब पन्नालाल मारे पीड़ा और भतारणा के तड़प तड़प कर रह गये। उसी दिन सन्निपात ने उनकी जीवनी की इति कर दी। वह यही कहते-कहते मर गये कि—"डोम मेरी क्रिया करे, पर यह नालायक मानिक मेरी चिता या श्राद्ध में कदापि सहयोग न दे। यह मेरा बेटा नहीं, हत्यारा है, राक्षस है।"

हीरा पूरी कठकरेजी है, ऐसी धारणा पास-पड़ोस की उन लुगाइयों के मन में हुई जिन्होंने उसके पति के मर जाने के बाद भी उस अभागिनी की आँखों को बाढ़ की नदी की तरह उमँगते न देखकर ताप के मरुस्थल की तरह शुष्क देखा था। उस दिन पड़ोसिनें, जब जवाहर के कोठे पर हीरा-पति के अपघात का सवाद पाकर दुनियादारी निबाहने के लिहाज से हीरा के घर पर आयीं तब उन्होने देखा कि, वहाँ, चारो ओर, रोदन और स्यापा का साम्राज्य था। बाहर के बैठक मे हीरा के पिता दुपट्टे मे मुँह छिपाकर बच्चों की तरह रो रहे थे और घर में उसकी माँ प्राण छोड़ छोड़कर, माथा पटक-पटक कर घिघिया रही थी। और वह हीरा! वह चुपचाप, साँवले पत्थर की सुगढी—पर, परम गभीर भाव की मूर्ति की तरह, अपनी माँ के पास खडी थी। उनके सर पर वस्त्र नहीं था, माँग में अभी तक लाल सुहाग चमक रहा था और कलाइयों की चूडियाँ तबतब छोटी चिडियों-सी चहक उठती थीं जबजब वह अपनी माँ को शान्त करने के लिये अपने हाथों को उसके माथे के या मुँह के पास ले जाती। उसकी बेचारी माँ को इतनी याद कहाँ कि विधवा होते ही हिन्दू-लड़कियों के सोहाग चिह्नों को उसी तरह उड़ा देना चाहिये जैसे सन्ध्या होते ही दिवा सुन्दरी के मुँह का उज्ज्वल-रँग

उड जाता है। प्रथा-पुराण का यह पाठ पडोसिनों ही को मजे मे याद रहा। वे आते ही पहले तो हीरा को अपने बीच मे बैठा कर, उसके पति के सच झूठ गुणों की वर्णना कर गला फाड़-फाड़कर रोने लगीं। इसके बाद उनमे से किसी बूढी पुरखिन ने, अपने आँसुओं से हीरा का मस्तक और कपोल तर करते हुए उसके माथे का सिन्दूर पोछ डाला, फिर एक-एककर उसकी दोनों कलाइयों की अनुराग-मयी और नयी चूडियाँ तोडी गयीं और फिर औरतों की एक पूरी मण्डली, हीरा को आगे कर, रोती-पीटती नीली-नदी नारायणी की ओर चली।

और अब भी वह हीरा रोती नहीं थी। वह चुपचाप पड़ोसिनों और सबन्धिनियों की रोदन रागिनी पर ताल की तरह चरण रखती हुई—करुण स्वप्न-लोक में विचरती हुई-सी—पथ पर चली जा रही थी। उसकी इस बाहरी कठोरता पर पडोसिनें मन ही मन क्या क्या विचार कर रही थीं। उसे कठोर हृदया समझती थीं, कुलटा भी और कभी कभी एक दूसरे से यहाँ तक फुसफुसा उठती कि—ऐसी ही लड़-कियाँ विधवा होती हैं, जिनकी आँखों में आँसू नहीं, हृदय में करुणा नहीं। जरूर यह अगले जन्म की राक्षसी है, इसी के अभाग्य ने इसके युवक पति को *खा लिया है।* मगर हीरा के मन में जो कोलाहल था उसे कौन देखता



था ? कोई नहीं। यहाँ साधारणत लोग ऊपरी भावों को देखकर ही भावुकता का मूल्य आँकने लगते हैं। किसी के तह तक पहुँचने की न तो जनसाधारण को फुर्सत होती है, और न दिल।

हीरा की उस अलौकिक स्तब्धता में जो रोदन छिपा था, जो खौलती हुई करुणा भरी थी वह ऐसी वेगवती थी कि, उसके एक ही ज्वार में सारे रतनपुर की लौकिक-आँसुओं की लुटिया डूब जाती, यदि वह अपने मनोगत भावों को बाहर होने देती। अपने सासारिक पति की इस अचानक मृत्यु में जैसे उसके मुँह पर एक जबरदस्त थप्पड़ लगा। ऐसा थप्पड़ जिसके आघात से हृदय के मौन-तार तक, टूटे-स्वर में, बोल उठे। वह रोती नहीं थी जरूर, मगर बाहर से। यदि कोई उसके दिल में पैठकर देखता तो वहाँ निराशा, करुणा, पश्चात्ताप और आँसुओ के अनन्त और अथाह समुद्र के सिवा और कुछ भी नहीं था। पति के मरने के बाद उसे एकाएक धक्का-सा लगा, कि, हो-न-हो, उसी के अप्रेम के कारण उसके पति की आयु अल्प हो गयी हो। नहीं तो, यौवन के दिन दोपहर में, काली सन्ध्या के इस भींगे हुए अन्धकार की क्या आवश्यकता थी ? तो क्या मैंने अपने पति की हत्या की ?—वह सोचने लगी, मन के मर्मान्तक कोलाहल से सहमती हुई—"नहीं

तो।" उसके हृदय से एक क्षीण और जर्जर स्वर निकला, उसे निर्दोष प्रमाणित करने को। मगर दूसरे ही क्षण भूतखाने की तरह उसके दिल में अनेक स्वर गूज उठे—हाँ, हाँ, तूने ही अपने पति की हत्या की है। तू ही उसे, कर्तव्य होने पर भी, प्यार नहीं करती थी। तू ही उसका तिरस्कार करती थी, उससे घृणा करती थी। और तूने ही, व्याह हो जाने पर भी, किसी और ही की मूर्ति अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित कर रखी थी। तुझे छोड़कर उस बेचारे, रँगीले-जवान की हत्या करनेवाला और कौन हो सकता है? अभिशाप तू थी, वह जवाहर तो व्याध मात्र थी। इशारा तेरा था, लखरामदास का नालायक लाड़ला तो सेनापति की आज्ञा पर अज्ञान में आग बरसानेवाला सिपाही मात्र था। हो!—हो! हीरा, तू ही उस अभागे की हत्यारिणी है।

हृदय के इस हाहाकार से हीरा, विलाप करती औरतों के आगे चलती हुई नारायणी-पथ में, मन ही-मन काँप उठी। उसकी आँखों के आगे दिनदहाड़े अन्धकार का काला परदा फैलने लगा। पहले धूमिल, फिर कुछ गंभीर और अन्त में काजलकाले रंग में, हीरा की खुली-आँखें डूब गयीं। उसने एक बार आँखों को मलकर उन्हें प्रकाशित करना चाहा, पर वह करुण-असफल रही। क्योंकि वह काला-पर्दा इन आँखों पर नहीं, बल्कि, भीतर की उन आँखोंपर था जिनसे

ये आँखें उजाले अँधेरे का अर्थ सीखती हैं। और उन आँखों तक इन हाथों की पहुँच कहाँ।

एकाएक उस अकथ अन्धकार में हीरा को अनेक प्रभापूर्ण मानव-मूर्तियाँ चलती-फिरती, भाव-भंगी बनाती दिखाई पड़ने लगीं। हीरा उनका अभिप्राय समझने के लिये उन्हें गौर से देखने लगी। सब मूर्ति एक ही रूप की थीं और सबका रूप हीरा के मृत-पति का चित्र था। मानों उसका पति भयानक मुँह बनाकर हीरा का परिहास कर रहा था। हाँ, हाँ वह बोल भी रहा था। हीरा ने सुना—साफ, साफ! उसने कहा—'आ हो, हीरा! अब पता चला। अब मालूम हुआ कि तू मुझे क्यों नहीं प्यार करती थी, अब मैं तेरी जीवनी काले-तख्ते पर लिखे वाक्य-समूहों की तरह पढ़ सकता हूँ, पढ रहा हूँ। क्योंकि, अब मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ, बला से दुरात्मा सही। और आत्मा शरीरियों के एक-एक भाव की हँसती-बोलती तस्वीर तक देख लेता है। हा हा हा हा! सच हीरा, तू काँप मत! तू बस उसी मानिक को प्यार कर जिसके लिये मेरा तिरस्कार करती थी। मैं ही न तेरे पथ का काँटा था? ले अब मैं दूर हूँ! तेरे अन्दाज से नहीं हूँ। अब तुझे किसका डर है? क्या फिक्र है। अरी पति-घातिनी, अब तू जी भर कर खुल खेल!

और उसके पति की भयानक मूर्तियाँ, वीभत्स भाव से,

हीरा का मुँह चिढा चिढाकर, हो हो हो हो कर उस काजल काले अन्धकार पट पर नाचने लगीं।

मानिकलाल और जवाहर की चोट गहरी नहीं थी, वे जल्द ही अस्पताल से अपने घरों पर चले आये। मृत बाबू पन्नालाल का श्राद्ध-कर्म तीन चार दिनों तक उनकी पत्नी ने सँभाला, इसके बाद मानिक ने अन्त तक सारे श्राद्ध का संपादन किया। मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि मानिक के मन पर पिता की मृत्यु का आवश्यक से अधिक कुछ प्रभाव पड़ा। नहीं, बिलकुल नहीं। बल्कि, एक तरह से, वह अपनी प्रत्येक प्रकार की स्वाधीनता-प्राप्ति पर प्रसन्न ही हुआ। यह उसके आचरणों से स्पष्ट पता चलता है।

जिस दिन बाबू पन्नालान के श्राद्ध का तेरहवाँ अथवा अन्तिम दिन था उस दिन शाम को एक किराये की गाड़ी मानिकलाल के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। श्राद्ध में आये दर्जनों मेहमान अभी उपस्थित ही थे। सबने देखा, रतनपुर की विख्यात वेश्या कुन्दन अपने जागते जादू जवाहर के साथ गाड़ी से उतर कर, मेहमानों में बैठे मानिकलाल की



ओर बढ़ी। मानिक स्वयं उठ खड़ा हुआ। बिलकुल लापर्वाही से कुर्सियाँ मँगाकर उन्हें बैठाया, पान-पत्ते को प्रेम से पूछा, प्रदान किया। और यह सब किया मुहल्ले के बड़े-बड़े स्वयंभू-समालोचकों और नाते के नाक सिकोड़नेवालों के आगे। कुन्दन ही की जुबानी—वह आयी थी मानिक के पिता की मृत्यु पर मातम-पुर्सी करने। आने का जबरदस्त नाता और कारण था वह हत्यकाण्ड जिसमें हीरा का पति मारा गया, जवाहर-मानिक घायल हुए और हत्यारे ने अपनी जान भी दे दी। उस काण्ड ने अचानक-आवेश से मानिक को कुन्दन की ओर और कुन्दन को माणिक की ओर फेंक दिया। अब कुन्दन मानिक को ताड़ गयी थी—नया शौकीन! वह उसे जवाहर के जाल में फाँसकर, पन्नालाल की गाढ़ी कमाई पर हाथ फेरना चाहती थी। मातमपुर्सी के लिये, गृहस्थ के घर, निखरी वेश्या कुन्दन के आने का असली कारण यह था।

मगर मानिक के मूर्ख मन ने तो इस घटना में केवल जवाहर का मुहँ भर देखा। देदीप्यमान, पूर्ण-यौवन, ललित, लावण्य—और उसके घर! वह पागल और देख ही 'क्या' सकता था। कोई सोचेगा पिता की मृत्यु ऐसी दुखद-घटना के तेरहवें दिन ही और छोटे-बड़े स्वजनों के आते ही मानिक का यह व्यवहार निर्लज्जता-पूर्ण था। यह आरोप

बिलकुल ठीक है, क्योंकि, वह तो अपने पिता के सामने ही उनके शासन से डरते-डरते निर्लज्ज हो गया था। और जिसने एकबार अपने पिता के सामने निर्लज्जता कर ली वह अब उनके मर जाने पर सगे सबन्धियों की कहाँ तक पर्वाह कर सकता है। मानिक, रिश्तेदारों के चेहरे पर का क्षोभ और घृणा न देखकर जवाहर के मुँह पर एक अजीब अवेश्यापन और अथोर आकर्षण देख रहा था। कुन्दन ने ताड़ा और उसके मुँह की गन्दी झुर्रियाँ फूल उठीं।

उनके चले जाने पर मानिक की माँ ने उसे भीतर बुलवाया। घर में मुहल्ले की एक मुहँ-चढी बूढी मानिक को देख कर, विरोध भाव से, जोर-जोर से कहने लगी—"धन्य है, तुम्हारा दिल भैया! अभी मुख्तार साहब की आत्मा घर से निकली भी न होगी और जो नहीं होना चाहिये होने लगा! वाहरे जमाना! अरे हम लोग और हमारे बाप दादे लोग भी जवान थे। मगर हमने आज के लाड़लों की तरह कभी सर पर बेशर्मी के आसमान को नहीं उठाया।" बूढी की बातों को मानिक मन ही मन घृणा से पी गया। यद्यपि उसे क्रोध आया पर वह बूढी के सर पर न उतर कर उसकी माँ के आगे उतरा। सामने जाते ही चिन्नाकर बोला—"क्या बार-बार भीतर पुकारती हो? बाहर भी आदमी हैं, कि नहीं?"

धीरे से सजल रूप से मानिक की माँ ने कहा—बेटा, अब तुम इस घर के मालिक हुए, अब तुम्हे इस तरह बात-बात में तिनगना शोभा नहीं देगा। अभी बाहर औरतें कौन आयी थीं ?"

मानिक समझ गया। उसने साफ़-साफ जवाब दिया "जो आयी थीं उन्हें तुम जानती हो अम्मा ! अब आगे कहो—कि, अब वे यहाँ कभी न आवें, आवे भी तो मैं उन्हें धक्के दिलाकर निकलवा दिया करूँ। यही न तुम्हें कहना है ?"

माता रोने लगी—"तू मेरी सुनता ही नहीं। वे भी नहीं रहे—तो क्या अब मुझे रुलावेगा ?"

"नहीं माँ ! तुम रोवो ही क्यों। मैं क्या बुरा करता हूँ ? बाबू जी शराब नहीं पीते थे ? वे पैसे नहीं खर्चते थे ?"

"मगर वे—" आनेवाली वेश्याओं को सकेत कर उसकी माँ बोली—"वे क्यों आयी थीं ? हीरा का घर अन्धेरा हो गया, तेरी जान जाते-जाते बची और अभी कुछ बाक़ी है ? बोल !"

मानिक चुप रहा, आँखें नीची किये।

"बस, मेरा यही कहना है कि, परमात्मा का दिया और तेरे पिता का जोड़ा धन तेरे खाने के लिये काफी है। मगर, भले आदमियों की तरह। आवारों की तरह नष्ट करने के लिये वो कुबेर की सपत्ति भी काफ़ी नहीं। तुझे जो

कुछ भी खाना पीना हो, बच्चे ! घर पर, मेरी आँखों के आगे, खा-पी । इसमें मैं उज्र करूँ तो मेरी ज़बान पकड़ । और उस डायन कुन्दन और उसकी मोहिनी जवाहर की बात भूल ! नहीं तो तू जरूर मुझे रुलावेगा—इस धुधले बुढ़ापे में ।"

मानिक ने कहा—"बुरा न मान तो एक बात पूछूँ ! मेरा ब्याह भी होगा या नहीं ?"

दुखिनी होने पर भी एक बार इस प्रश्न पर मानिक की माँ प्रसन्नता से सजग-सी हो उठी। उसकी आँखें जरा उज्वल हो गयीं—"क्यों नहीं होगा। तू ही तो सबसे बड़ा अड़गा है अपने ब्याह में। यद्यपि इस साल ब्याह नहीं होना चाहिये, तेरे पिता की बर्षी के बाद ही कोई शुभ-कर्म होना चाहिये, परन्तु, तू बाधा न दे तो मैं जल्द से जल्द तेरे ब्याह की व्यवस्था करूँ। ब्याह और तेरा—मैं जरा इशारा करूँ तो हजार-हजार लड़कीवाले मेरी ड्योढ़ी पर खड़े होकर नाक रगड़ें।"

मानिक की माता गर्व से एकबार तन गयी। "ठीक करूँ बेटा ब्याह ?" उसने पूछा।

"तुम नहीं माँ, स्वयं मैं ठीक करूँगा। तुम्हीं कहती हो अब घर का मालिक मैं हूँ, तब मुझे ही अपनी शादी पक्की करने दो।"

"सुनूँ भी, किससे तू सम्बन्ध करना चाहता है ?"

"तुम बिगडोगी।"

"बोल भी !"

"बिगड़ो मत माँ ! अगर मेरा भला चाहती हो तो मुझे उसी से व्याह करने दो जो थोड़ी देर पहले बद-नाम बूढी कुन्दन के साथ आयी थी। मैंने सुना है, मैं उसकी आँखों से पहचानता हू, वह कुन्दन-सी खानदानी-वेश्या नहीं। वह किसी हिन्दू-गृहस्थ की सुकन्या है।"

मानिक की इस बात पर उसकी माँ दाँतों अँगुली दाब कर उस ढीठ का मुहँ ताकती रह गयी।

कुन्दन ने जवाहर को लाख समझाया कि वह मानिकलाल से उसके बाप का माल ऐंठे, मगर यह धोका-धडी का काम उससे न होता। मानिक ही नहीं, कुन्दन के कोठे पर आनेवाले किसी भी युवक या ऐय्याश को जवाहर स्वय नहीं ठगती थी। वह तो केवल गाती या कुन्दन के कथनानुशार वेश्याओं-सी कुछ बातें बना देती, मगर, मन-ही-मन लाज से लड़ती और हया से गड़ती हुई। इसीलिये पैसों के मामले में कुन्दन जवाहर का

एतबार न करती। मनचलो को जवाहर के सामने बैठकर खुद ही बातों में फाँसती और फिर उन्हें उसके रूप-रग पर उतारती। इसी तरह कुन्दन ने कम से कम गाड़ियो रईस घरो के लाड़लो को दोनो हाथों से लूट लिया। यद्यपि उस हत्याकाण्ड में पुलीस के हाथो से बचने में उसे अपनी गाँठ से चार-पाँच हजार रुपये खर्च करने पड़े, फिर भी, अभी उसके पास बहुत रुपये थे। अब उसे उस बरसाती काली-रात की तरह रोटी और कपडे और 'बुढापा कैसे कटेगा' की फिक्र नहीं थी। मगर सन्तोप उसे नहीं था। वह और लूटना चाहती थी। जिस तरह वह नौजवान ठग कुन्दन की सम्पति लूट ले गया था वैसे ही वह शहर और बाहर के एक-एक नौजवान को लूट लेना चाहती थी।

उसने जवाहर को समझाया कि मानिक आया करे तो वह उससे बहुत घुलामिला न करे, तबतक, जबतक कि कोई अच्छी रकम हाथ में न आ जाय। वह विविध भावों से उस नवयुवक को अपनी ओर आकर्पित भी करती रहे, क्योंकि, ऐसा न करते रहने से अक्सर पछी उड़ जाते हैं। मगर, अपने तन को उसकी हवा तक न लगने दे। वह मानिक को देखकर इस तरह अगड़ाई ले गोया उसे गले से लगाना चाहती है, लेकिन ज्यों ही मानिक उसके झूठे अर्थ को सच्चा समझे त्यों ही वह सच को झूठ और

झूठ को सच बनाकर उसे टरका दिया करे। पर एक-न-एक फर्मायश के साथ। कुन्दन चाहती थी कि जवाहर, मानिक के हाथों अपनी एक-एक मुस्कराहट कम से कम पाँच-पाँच सौ रुपये को बेंचे।

उस दिन मानिक आया। अकेले और दोपहर को। उसे देखते ही कुन्दन ने एकान्त में ले जाकर जवाहर को पाठ पढाना शुरू किया—

"आज बग्घी के लिये बोलना। अभी, उसके पास जाकर मौन धारण कर, मुहँ बिगाड़ कर बैठना। जरूर ही वह सबब दरियाफ्त करेगा। पूछने पर बताना कि, किराये की गाडी पर चलने में शर्म मालूम होती है, और हम गरीबों के पास इतनी ताकत नहीं कि घोडा और गाड़ी को खरीदें भी और सँभालें भी। कहने का लख-लख-पती इसी कोठे पर आते हैं। कोई मुझे अपनी जान, कहता है, कोई 'रूह', मगर एक भी ऐसा दिलदार नहीं जो अपनी जान या रूह को पाँच सौ रुपये की एक गाड़ी और तीन-चार सौ का घोडा दे दे। दे कोई, तो हम इज्जत के लिये उपवास तक करें, मगर, घोड़ा-गाडी को बरकरार रखें, कभी न निकालें।"

मगर मानिक के आगे जवाहर का मुँह न खुला। वह भी, न जाने किस सयोग से, मानिक को मन ही मन कुछ पह्चानने-सी लगी। मानिक की उच्छृखलता में उसे

अद्भुत आनन्द मिलता था। उसकी लापर्वाही को वह पूर्व-परिचित मित्र की तरह प्रेम से देखती। फिर, उस हत्याकाण्ड के बाद उसने मानिक के बारे में जो-जो बातें सुनीं उनसे वह और भी उसकी ओर खिंची। उसने कुन्दन ही से सुना वह शहर के मशहूर मुख्तार मुंशी पन्नालाल का लड़का है। वह कई लाख की सपत्ति का अधिकारी है। वह पैसे को पैसा नहीं समझता और सोने को सोना नहीं।

कुछ वैसी ही बातें जैसी जवाहर ने कभी अपने किसी परम निकटस्थ सबन्धी मे देखी थीं।

उस दिन मानिक जवाहर से एकान्त में बातें करना चाहता था। इसीलिये घर से तैयार होकर आया था। मगर, वह कुन्दन की मतलबी-आँखों और चालाकी-भरी बातों से नफरत करता था। जवाहर को देखते ही जैसे उसके हृदय में प्रेम-भाव उठते थे वैसे ही कुन्दन के दर्शन होते ही वह एक तरह से सहम-सा जाता था। कुन्दन अपनी एक मतलबी, परखी, मुसकान से सारे वातावरण को रण्डियाना कर देती थी। इसीलिये उस दिन किसी न किसी तरह वह उसको कुछ देर के लिये दूर हटाना चाहता था। इसके लिये उसने बहुत अच्छी युक्ति सोच रखी थी।

जब जवाहर उसके पास आकर बैठ गयी और उसके



लिये—कुन्दन की दुष्ट-हिदायतों को भूलकर—पान लगाने लगी, तब मानिक ने उससे कहा—

"जवाहर बाई, आज मैं यहीं पर, इसी वक्त, शराब पीना चाहता हूँ।"

दरवाजे की आड में बिल्ली सी खड़ी कुन्दन जवाहर के जवाब देने के पहले ही सामने आ रही और बिगड कर बोली—"पिस्तौल भी लाये हो कि नहीं? दोपहर में शराब पीकर किसका खून करोगे? मुझ बुढी पर तो नजर नहीं है?"

"नहीं, नहीं कुन्दन बाई! तुम भी कहाँ की कौडी लाती हो। अरे मैं अपने घर में आजादी से नहीं पी पाता इसलिये तुम्हारे घर चला आता हूँ। क्योंकि, आराम से, दोनों जहान को भूलकर, पीने की सुविधा जैसी यहाँ है वैसी इस समूचे रतनपुर में कहीं नहीं।"

जवाहर ने कहा—"शराब नहीं—माफ करो! मेरी बडी अम्माँ का घर कलवरिया नहीं है। न हम ऐसे व्यापारी ही हैं कि, शराब के भरोसे भगवान को भूल बैठें। शराब नहीं, वह चाहे हजार अच्छी हो, नशीली हो, मगर वह शरीर से लेकर आत्मा तक का नाश करने वाली डायन है। उसीके फेर में मेरे बा   बा   ।"

कुछ कहते-कहते वह रुक गयी। मानिक ने देखा एकाएक कुछ सोचकर रुकने से जो मानसिक आघात लगा

उससे उसकी आँखें सजल हो गयीं। वह जवाहर के इस रुकने का कारण पूछना चाहता था, मगर पहला जरूरी काम उसने यही समझा कि कुन्दन किसी तरह टरकाई जाय।

"कुन्दन बाई" वह पुन बोला, जरा बनकर—"तो मुझे शराब न मिलेगी?"

"इस दोपहर में? छि?"

"मैं मर जाऊँगा कुन्दन बाई!"

"पीकर मरने से न पीकर मरना अच्छा है।"

"ज्ञान मत बघारो, शराब मँगाओ! एक बोतल जानी-वाकर, काला—लेबिल।"

"अरे इस वक्त कौन जायगा काला-लेबिल लेने? यहाँ पर मुझे छोड़ और कोई नहीं है।"

"तो तुम्हीं जरा।" संकोच का नाट्य करते हुए, जेब से निकाल कर मानिक ने एक नोट बूढ़ी कुन्दन की ओर बढ़ाया। गृद्ध की तरह दिव्य-दृष्टि से कुन्दन ने नोट की ओर देखा, यह ताड़ने के लिये कि दस का है या पचास का। मगर मानिक के हाथ में नबरी नोट था—१०० का। कुन्दन ने तुरन्त ही उसे अपनी मुट्ठी में कर लिया। फिर बोली—"मुझे ही जाना पड़ेगा। तुम लोग ऐसे बदमाश हो कि, एक बूढ़ी को बाजार तक दौड़ाने में खुदा को भी नहीं डरते। अच्छा, मैं अभी आयी।" चलते-चलते कुछ सोचकर



उसने जवाहर से कहा—"बेटी, मैं आती हूँ। तबतक तू ऊपर जाकर धूप में सूखते हुए कपड़ों को समेट कर, तह कर, ट्रङ्क में रखदे।" मानिक की ओर मुड़कर उसने धूर्तता से कहा—"माफ करना बाबू साहब, थोड़ी देर तक आपको अकेले ही बैठना होगा। नहीं, कहीं पानी पड़ने लगा तो मेरे और जवाहर के सारे कपड़े मिट्टी हो जायँगे।"

मानिक ने मन-ही-मन कहा—"पहले तू टल भी इधर से —खूसट!"

जवाहर उठी, ऊपर जाकर कपड़े समेटने को। उधर कुन्दन के घर से बाहर होने की सूचना मानिक के कानों को मिली। दरवाजे के बन्द होने की आवाज आयी। वह इतना ही तो चाहता था। उसने उठकर जवाहर का हाथ पकड़ लिया—

"बैठो, तुम्हारे ही लिये उस डायन को यहाँ से टरकाया है।"

"नहीं, नहीं। मुझे ऊपर जाकर कपड़े समेटने दीजिये। नहीं तो वह नाखुश होंगी। वह मेरी बड़ी अम्माँ हैं।"

"मैं बड़ी अम्माँ को खुश कर लूँगा, इसकी फिक्र तुम न

करो, अरे हाथ छुडाकर क्यो भागना चाहती हो—हाँ। इधर—यहाँ।"

जबरदस्ती मानिक ने उसे अपने सामने तोशक पर बैठाया। उसके इस व्यवहार से जवाहर के कपोल अनुराग-रंजित हो गये।

मानिक ने स्पष्ट कहा—"जवाहर बाई, मैं तुम से कुछ गभीर बाते करना चाहता हूँ। मेरी एक भी बात को मजाक या बाजारू झाँसा-पट्टी न समझना। मैं तुम्हें बाजार से हटाना चाहता हूँ।"

"क्यों—क्यो ? मेरी बडी अम्माँ ।" एकाएक कुछ न समझ कर जवाहर बोली।

"बडी अम्माँ चूल्हे में जायँ।" मानिक ने कहा—"मैं जानता हूँ तुम कुन्दन की कोई नहीं। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम किसी भले घर की भागी या भगाई हुई बेवकूफ बेटी हो। मैंने स्टेशनवालों को एकबार तुम्हारे बारे में बातें करते सुना था।"

जवाहर चुप रही। मानिक की स्पष्ट बातें जैसे सीधे उसके मर्म तक पहुँची। धीरे धीरे उसकी पूर्व कहानी उसकी आँखों में घूमने लगी।

"इसीलिये," मानिक ने उसे चुप देखकर अपने व्याख्यान को और भी तूल दिया—"मैं तुम्हें बाजार से

उसने जवाहर से कहा—"बेटी, मैं आती हूँ। तबतक तू ऊपर जाकर धूप में सूखते हुए कपड़ों को समेट कर, तह कर, ट्रङ्क में रखदे।" मानिक की ओर मुड़कर उसने धूर्तता से कहा—"माफ करना बाबू साहब, थोड़ी देर तक आपको अकेले ही बैठना होगा। नहीं, कहीं पानी पड़ने लगा तो मेरे और जवाहर के सारे कपड़े मिट्टी हो जायँगे।"

मानिक ने मन-ही-मन कहा—"पहले तू टल भी इधर से—खूसट।"

जवाहर उठी, ऊपर जाकर कपड़े समेटने को। उधर कुन्दन के घर से बाहर होने की सूचना मानिक के कानो को मिली। दरवाजे के बन्द होने की आवाज आयी। वह इतना ही तो चाहता था। उसने उठकर जवाहर का हाथ पकड़ लिया—

"बैठो, तुम्हारे ही लिये उस डायन को यहाँ से टरकाया है।"

"नहीं, नहीं। मुझे ऊपर जाकर कपड़े समेटने दीजिये। तो वह नाखुश होंगी। वह मेरी बड़ी अम्माँ हैं।"

"मैं बड़ी अम्माँ को खुश कर लूँगा, इसकी फ़िक्र तुम न

करो, अरे हाथ छुडाकर क्यों भागना चाहती हो—हाँ। इधर—यहाँ।"

जबरदस्ती मानिक ने उसे अपने सामने तोशक पर बैठाया। उसके इस व्यवहार से जवाहर के कपोल अनुराग-रंजित हो गये।

मानिक ने स्पष्ट कहा—"जवाहर बाई, मैं तुम से कुछ गंभीर बातें करना चाहता हूँ। मेरी एक भी बात को मजाक या बाजारू झाँसा-पट्टी न समझना। मैं तुम्हें बाजार से हटाना चाहता हूँ।"

"क्यों—क्यों ? मेरी बडी अम्माँ।" एकाएक कुछ न समझ कर जवाहर बोली।

"बडी अम्माँ चूल्हे मे जायँ।" मानिक ने कहा—"मैं जानता हूँ तुम कुन्दन की कोई नहीं। मैं यह भी जानता हूँ कि तुम किसी भले घर की भागी या भगाई हुई बेवकूफ बेटी हो। मैंने स्टेशनवालो को एकबार तुम्हारे बारे में बातें करते सुना था।"

जवाहर चुप रही। मानिक की स्पष्ट बातें जैसे सीधे उसके मर्म तक पहुँची। धीरे धीरे उसकी पूर्व कहानी उसकी आँखों में घूमने लगी।

"इसीलिये," मानिक ने उसे चुप देखकर अपने व्याख्यान को और भी तूल दिया—"मैं तुम्हें बाजार से



अलग रखना चाहता हूँ। सच कहता हूँ जवाहर बाई, मैं तुम्हे प्यार करता हूँ।"

"मुझे नहीं," जवाहर ने कहा—"मेरे इस रूप को। ऐसा तो सभी कहते हैं।"

"मैं तुम्हे अपने घर की रानी बनाकर रखूँगा।"

"चलो, झूठ बोलना हम तुमसे अच्छा जानती हैं। मैं यूँ ही किस रानी से कम हूँ। अक्सर बड़े-बड़े महाराज ..।" फिर सकोच ने उसका गला दबा दिया।

"अच्छा, तुम कहाँ की रहनेवाली हो? सच कहना। तुम्हे मेरे सर की क़सम।"

"अपने सर की क़सम क्यों देते हो?"

"क्योंकि, फिलहाल यही सब से बड़ी चीज़ मेरे है और कसम के लिये बडी चीज ही का नाम लिया है। तुम किस जाति की हो जवाहर बाई?"

"मैं रण्डी हूँ।"

मानिक ने झपट कर उसका मुँह अपने दिया—"झूठ नहीं। मैंने पहले ही कहा मै तुम्हें ठगने नहीं, आदर से अपनाने

अब जवाहर अपने को न छिपा अपना सारा इतिहास उसने मानिक के ।। इस कहानी के कहने में वह

बार आहें भरकर रह गयी और अन्त में अपने पिता के पतन की गाथा समाप्त करते-करते, वह रोने लगी। मुरीगंज से भागने के बाद उस दिन पहली ही बार, दिल खोल कर, किसी दूसरे को अपना रहस्य उसने दिखाया।

उधर मानिक ज्यों-ज्यों उसकी कहानी सुनता था त्यों त्यों उसकी पवित्रता को गले से लगा लेने के लिये व्याकुल होता था। जवाहर के पिता का शराब के लिये पागल होना, सुनकर वह बहुत देर तक माथा सिकोड़ कर कुछ सोचता रहा। उसकी आँखों के सामने नारायणी-तट के पीपल के पास ऊधम मचानेवाला वह होशियार-पागल घूमने लगा। वह मन ही मन सोचने लगा हो-न-हो वही इस अभागिनी का पिता हो। मगर, अब वह होगा कहाँ? उस वक्त जवाहर से उस पागल के बारे में मानिक ने कुछ भी नहीं कहा। उसकी सारी कहानी सुनकर वह बहुत देर तक उसे प्यार से सहलाता रहा। और बार बार यही आग्रह करता रहा कि, वह उसके घर चलकर उसकी स्त्री की तरह रहे।

"मगर," जवाहर ने कहा—"मुझे कौन तुम्हारी स्त्री मानेगा? पहले तो अम्माँ ही तुम्हारी, झाड़ू लेकर मारने दौड़ेंगी।"

"मेरी अम्माँ मुझे बहुत प्यार करती हैं। वह मेरे लिये

कुछ भी सहन कर सकती हैं। उन्हें मैंने राज़ी भी कर लिया है। बस, अब तुम्हारी ही रजा की देर है। तुम चलो जवाहर, इस नरक के बाहर। मेरे घर को स्वर्ग बनाओ। बोलो, चलोगी ?"

"नहीं—बड़ा अपमान होगा। बड़ी छीछालेदर।"

"मैं अपनी जान देकर तुम्हारी इज्जत बचाऊँगा। कुछ मेरा भी एतबार करो।"

"आप सपने-सी बातें करते हैं।"

"तुम उस सपने में प्राण डाल सकती हो। अस्वीकार न करो जवाहर। मैं बहुत-बहुत ठोकरें खाकर एकबार फिर किनारे आया हूँ—और वह किनारा तुम हो। मैं प्रार्थना करता हूँ, कृपा करो, मुझे फिर भटकने और प्रवाह में बहने न दो।"

सच्चे अनुराग से जवाहर के कोमल चरण को अपने हाथ में लेकर मानिक उसकी अँगुलियाँ चिटखाने लगा। इस बार लज्जा से लाल होकर वह बाधा देने लगी। मगर उसने उसे न छोड़ा। वह झिझकती हुई उलझ पड़ी। और थोड़ी देर में एक दूसरे की भुजाओं में बे-सुध होकर कस गये।

उसे चूमते हुए मानिक ने पूछा—"कब चलोगी ?"
"जब ले चलो।" कहकर जवाहर बच्चियों की तरह उमँग

कर मानिक के हृदय में बँध गयी। इसी समय कुन्दन की कर्कश आवाज कमरे में सुनायी पडी—

"हाँ—यह बात है!"

मगर, अब कुन्दन से कोई घबराया नहीं। जवाहर झिझककर मानिक के बाहु-पाश से अलग होना अवश्य चाहती थी, पर मानिक ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। वे ज्यो के त्यों रहे और कुन्दन रही उनके सामने खड़ी होकर धौंकनी-सी गरम साँसें लेती।

"ज़रा गिलास और सोडा भी कुन्दन बाई!" मानिक ने लापर्वाही से कहा।

"चुप रहो।" तडप कर कुन्दन बोली—"बडे शरीफ-ज़ादे बने हैं। अच्छा, अब धीरे से खिसक भर जाइये, मेरे घर से।"

"क्यों, क्यों, कुन्दन बाई? आख़िर आज इतनी खफगी क्यों?"

"यही करने के लिये मुझे टरकाया था? और मैं इस हरामजादी को ।"

"बस कुन्दन!" अब मानिक ने डाँटा उसे—"मुझे ही जो चाहो कह लो। जवाहर की ओर ज़बान न चलाना। क्योंकि, वह तुम्हारी लडकी नहीं, रिश्तेदारिन नहीं, सगी नहीं।"



"तो तुम्हारी वह कौन है ? दादी, नानी, चाची ! हूँ हूँ ! —मुझे ही यह पट्टी पढ़ाने चले हो । अरे बच्चू, मैंने तुम जैसे छोकरों को बना बनाकर बिगाड़ डाला है ।"

"यह सच बात है ।" हँसकर मानिक ने कहा । उसकी इस हँसी से कुन्दन और भी तिलमिला उठी ।

"अच्छा अब आप तशरीफ ले जाते हैं शरीफों की तरह, या किसी और को बुलाना होगा ?"

"और को भी बुलाना होगा ।" मानिक ने कहा— "एक बन्द गाड़ीवाले को, जो जवाहर को मेरे घर तक पहुँचा दे और जरूरत हो तो पुलीसवालों को भी, जो इसका इजहार ले लें कि आज से यह तुम्हारी कोई नहीं और मेरी सब कुछ है । अब इस घर से हम दोनों साथ ही जायँगे ।"

कुन्दन ने जॉनीवाकर की बोतल को ज़मीन पर तड से पटक दिया और मारे क्षोभ और लोभ के वह जोर-जोर से चिल्लाने लगी—"बाप रे बाप ! कोई दौड़ो ! कोई बचाओ ! यह आवारा छोकरा मुझे लूटे लिये जा रहा है ।"

हीरा फिर अपनी ससुराल न गयी और न उस अभागिनी को वहाँवालों ने बुलवाया ही। पति की मृत्यु के बाद वह मारे दुखों और मार्मिक-कष्टों के अर्ध विक्षिप्त-सी हो गयी। अब वह न तो वैसी हँस-मुख थी और न वाचाल। अब तो वह भीतरी ताप से सूखकर एक नारी का कंकाल मात्र रह गयी थी।

मुहल्लेवाले कहते—क्योंकि, बिना कहे उनका पेट फूलता—"हीरा को भूत लगा है। है कोई भारी शैतान। पहले उसने इसके पति की जान ली और अब इसकी ओर झुका है। तभी तो वह रात-रात भर जागती और चिल्लाती रहती है। कभी पुकारती है—मुझे मारो मत! मैं बिलकुल बे-क़ुसूर हूँ। और कभी कहती—मारो, मारो! सारी ख़ुराफ़ातों की बुनियाद मैं ही हूँ।"

वह कभी दिन-दिन भर उपवास करती और बकती-झकती रहती, और कभी दो-दो दिनों तक उसके आँसुओं का तार न टूटता। उसके गरीब माता पिता ने, अपनी सामर्थ्य के अनुसार, अनेक उपाय किये, डाक्टर-वैद्य से लेकर प्रेत-पूजक और ओझों तक की ड्योढियाँ नापीं। पर, वह न अच्छी हुई, न हुई।

एक दिन उसे अपने दरवाजे पर गन्दे-वदन, बिखरे बाल, पगली सी खड़ी देखकर, एक पड़ोसिन ने पूछा—

"मानिक के घर की ओर क्या देख रही है ? पन्नालाल के उठते ही उस घर से लज्जा भी उठ गयी। सुना है कि नहीं ? वह यहाँ की उसी वेश्या से व्याह करने जा रहा है।"

हीरा इधर जैसे मानिक को भूल ही गयी थी। उस दिन अचानक उसका नाम सुनकर उसे कुछ याद आ गयी। उसने पड़ोसिन से पूछा—

"कौन वेश्या है वह ?"

"वही—वही—जिस डायन के कारण आज तू पगली हो गयी है। वही जवाहर! सुना है इसी महीने मे दोनों की शादी होगी। वह न जानें कहाँ, न जानें कैसे शुद्ध की जायगी और तब मानिक के घर मे उसका व्याह होगा। लड़के के मोह में पड़कर मानिक की माँ ने इस सवन्ध की स्वीकृति दे दी है। मगर इसमें न तो कोई मुहल्ले का शरीफ शामिल होगा और न कोई रिश्तेदार। हायरे! डूब गयी, इस नालायक मानिक के कारण, एक भले-परिवार की लुटिया!"

पड़ोसिन तो इतनी बातें कहकर एक ओर चली गयी और हीरा के हृदय पर स्मृति के आरे क्रूरता से चलने लगे। वह बचपन से अपना और मानिक का सवन्ध सोचने लगी। वे धूल के महल, वह धौल धप्प, वह खुला तू-तू मैं-मैं और वह जीवन की निरर्थक सार्थकता! वह उसे



कितना प्यार करती थी। उसीके लिये तो उसने उसे नहीं प्यार किया जिसे प्यार करना उसका परम कर्त्तव्य था। ओह! वह अब वेश्या को व्याहने जा रहा है। अरे! यह ससार है या ठगालय? यह जीवन है या धोखा? यह प्रेम है या प्रपञ्च?

और फिर उसकी आँखों के आगे वही काला परदा पड गया। फिर वेही उजली मूर्तियाँ विकराल भाव से, उसका मुँह चिढाने लगीं—"क्यो हीरा। यही तेरा प्रेमी है? इसीके लिये तू मुझे फूटी आँखों से भी नहीं देखती थी? हा हा हा हा! डायन! अब कर न प्यार अपने मानिक को। अब मैं तेरे पथ मे कहाँ हूँ। अब जरा उस जवाहर से भिड—जो मेरी हत्या-नाटिका की मुख्य नायिका है। अब तू रोती क्यो है, प्रेम कर रे! कुलटे!"

उस दिन हीरा रात भर तडपती, रोती और वत्स-विहीना गऊ की तरह चिल्लाती रही। सुबह पड़ोसियों को नींद लगी—जब उसने कराहना बन्द किया।

और दिन खुलने पर सारे मुहाल ने आश्चर्य से सुना, हीरा का कहीं पता नहीं। चार बजे रात ही को वह नारायणी नहाने गयी और तभी से अब तक घर न लौटी। सुबह से उसकी खोज हो रही है। मगर कुछ पता नहीं चलता।

मानिकलाल अब कई महीने से, सारे शहर में बदनाम होता हुआ भी, शरीफ हो गया है। वह अब न तो आवारे दोस्तों के साथ शहर की सुफ़ैद-काली गलियों में चक्कर लगाता है और न पियक्कड़ों की तरह दारू पीकर इधर-उधर लुचई करता है। मानिक की माँ नयी पतोहू जवाहर की इस बात पर बहुत प्रसन्न है जो वह धीरे-धीरे मानिक को शराब से दूर कर रही है। अभी उसने शराब छोड़ दी हो सो बात नहीं है। वह पीता है और अपने बाप ही की तरह बेनागा पीता है, मगर घर में—और जवाहर के हाथों से भरा हुआ प्याला। मानिक की माँ को अब कुछ दु:ख होता है तो यही कि कभी-कभी मुहल्लेवाले और सगे-सम्बन्धी जवाहर के पूर्व जीवन और पन्नालाल के अच्छे खानदान को लेकर बड़ा मार्मिक ताना देते हैं। नहीं तो, परिवार में अब पूर्ण शान्ति है, जवाहर किसी भी कुल वधू से कम अपनी सास की सेवा नहीं करती। वह परिश्रम से तो मानो थकती ही नहीं। स्वयं दिन-दिन भर घर के कामों में जुती रहती है और माताजी को दिया की बत्ती भी अपने हाथ से बढ़ाने-घटाने का कष्ट नहीं देती। सबके ऊपर, वह ऐसी मधुर-भाषिणी और प्रेम मयी है, कि, मुहल्लेवालों के लाख रोने-गाने पर भी मानिक की माँ उसे

मामूली वेश्या मानने को तैयार नहीं। अब तो कभी कभी अपनी बहू को वेश्या कहनेवालियों पर वह मारे अभिमान के बिगड़ भी उठती है।

मानिक अब बड़े ध्यान से जमीन्दारी और बाबू पन्नालाल का लेन देन का व्यापार देखता है। फजूल-खर्ची से बचता है। बाबू पन्नालाल की मृत्यु के पहलेही से गृहस्थी और आमदनी का कारबार ठढा हो चला था। जवाहर को प्राप्त कर लेने के बाद मानिक ने तुरन्त ही उस ओर नजर की, और थोड़े ही समय में कहाँ क्या कमजोरी है यह समझ कर सारे कारबार को ठीक कर लिया।

उस दिन रतनपुर के पासही के अपने एक गाँव में वह गया था वसूल तहसील की व्यवस्था करने। वहाँ से लौटने में शाम हो गयी—दिया लग गयी। शहर में आने पर, रतनपुर के मशहूर दारू-खाने के पास उस दिन उसने असाधारण भीड़ देखी। कारण जानने के लिये जो निकट गया तो जो कुछ देखा उससे मारे प्रसन्नता के वह कण्टकित हो गया। उसने देखा वही नारायणी तटवाला पागल दारू-खाने के दरवाजे पर, आँखें चढाये और हाथ में दण्डा लिये बैठा है, और एक भी पियक्कड़ को भीतर नहीं जाने देता। दारू-खाने का मालिक सारी तरकीबें कर हार गया, पुलिस तक को पुकारा—पर सब व्यर्थ। वह वहाँ से

टलता ही नहीं। उसकी दारू के विरुद्ध बातें सुन-सुन कर सारे पियक्कड़ परीशान हो रहे थे, कि इस चिरकुट-धारी को इतनी अक्ल और शराब के बारे में ऐसा सन्निकट ज्ञान हुआ कैसे ?

वह पागल दण्डा फटकार-फटकार कर कहता—"ए शराब को गले लगानेवालो! बचो इससे। यह वह नशा है जो अच्छे से अच्छे इन्सान को शैतान की भट्टी में बरबस ले जाकर झोंक देती है। यह वह सनक है जिसमें आदमी अपने खानदान को, ईमान को और भगवान तक को भूल जाता है। यह भले आदमियों के पीने की चीज नहीं, यह आदमियों के पीने की चीज नहीं। यह शरारत का पानी है, सत्यानाश का प्रबल-प्रवाह है।"

और इस पर भी यदि कोई पियक्कड़ यह कहता कि—"मैं तो पीऊँ हीगा।" तो वह दण्डा तान कर जमीन पर पीटने लगता।" पी—, आ! पहले यह दण्डा तेरा खून पीयेगा, फिर तुझे शराब नसीब होगी। इसी दण्डे से बारह भट्टियाँ बन्द करा चुका हूँ। सैकड़ों पियक्कड़ों से तोबा करा चुका हूँ। मुझे न तो लाल पगड़ी का डर है और न काली का। मैं सबसे ज्यादा इस शराब से डरता हूँ। इसी ने मुझे तबाह किया है। इसी ने मेरी इकलौती, ईमानदार बेटी को, इस भवसागर के न जाने किस घाट पर, न जाने

किस हालत मे बहा फेंका है। मैं शराब के नाम से घृणा करता हूँ।"

भीड हटा कर मानिक उस पागल के सामने आया— "कहो दादा मुझे पहचानते हो।"

"तुझे-हो हो-हो-हो! तुझे! तू कौन है।" पागल हँसा।

"एक दिन हमारी भेंट हुई थी। वहाँ—याद है—नारायणी के तट पर। पीपल के नीचे।"

"ओ हो! होगा तू परिचित। मुझे अपने परिचितों की याद नहीं। इस वक्त सारी दुनियाँ से मेरा परिचय है और किसीसे भी नहीं। आखिर तू मेरा परिचित क्यों होना चाहता है? मुझे फुसला कर दारू पीयेगा? शराबखाने में जाना चाहता है? जा-जा! देखूँ तो, तू कैसा चालाक जान पहचानी है। मारे दण्डों के!"

और वह तडातड दण्डा पीट चला जमीन पर। मगर मानिक हटा नहीं उससे। वह सीधे उसके पास गया, उसका दाहिना हाथ पकडा और कहने लगा—" चलो आज मेरे घर पर तुम्हारा न्योता है। आज मेरे घर चलो दादा।"

"और इन पागल पियक्कडों को शराब पीने दूँ? और इस मतलबी कलाल को लोगों को हलाल कर पैसे बनाने दूँ? मैं नहीं जाता कहीं। मुझे कोई इस तरह न्योता ही नहीं देता। मैं यहीं ठीक हूँ।"

तमाशा देखते पियक्कड़ों में से कुछ ने कहा—"जाओ दादा! बाबूजी के घर। हम भी यहाँ से जाते हैं, कसम खाकर, कि, आज से शराब नहीं पीयेंगे। पीयें तो भगवान हमें नरक दे।"

किसी तरह समझा-फुसलाकर, गाड़ी में बैठाकर, मानिक उस पागल को अपने घर लाया और चुपके से बैठक में बैठाकर भीतर गया। उस वक्त जवाहर रसोई कर रही थी और मानिक की माँ उसकी सहायता। मानिक ने जवाहर से कहा—

"देखो! आज मेरे एक बड़े पुराने जान पहचानी फ़क़ीर एकाएक शहर में मिल गये हैं। मैं उन्हें लिवा लाया हूँ। वह ठहरेंगे नहीं, कहीं ठहरते ही नहीं। वह तो मुझ पर बड़ी कृपा करते हैं जो यहाँ तक आ गये हैं। जो कुछ भी तैयार हो, जल्दी से परस दो—तुम्हीं को खिलाना भी पड़ेगा। जल्दी करो!"

थोड़ी देर में रसोई ठीक हो गयी। मानिक को सूचना मिली। वह पागल बुड्ढे को लेकर खाने के कमरे में गया। उसे वहाँ बैठाया और फिर बाहर आकर जवाहर से बोला कि बिना संकोच के, घूँघट खोलकर, वह उस-फ़क़ीर को खाना खिलावे। इससे सबका मंगल होगा।

पहले जवाहर हाथ में लोटा और गिलास लेकर

उस कमरे में घुसी जिसमें वह पागल अकेले बैठा क्या जाने क्या-क्या बड़बड़ा रहा था। आहट पा कर उसने जवाहर की ओर देखा और देखते ही देखता रह गया। मानो उसे देखते ही उसका सारा पागल पन काफूर हो गया। वह कुछ सोचने लगा। उसने एक बार, दो बार, तीन बार अपनी आँखें साफ कीं, यह जानने के लिये कि वह भ्रम में तो नहीं है।

इधर उस बुड्ढे को देखकर जवाहर सर से पैर तक सन्न हो उठी। मजे में न पहचान कर भी जैसे उसने उसे कुछ-कुछ पहचाना। क्षण भर तो वह ऐसी चकित रही कि, उसके हाथ का ग्लास जमीन पर गिर पड़ा। वह झप से उस कोठरी के बाहर निकल आयी। सामने मानिक खड़ा था। मुस्करा कर उसने पूछा—

"क्या है? घबरायीं क्यों?"

"मैं इसके सामने नहीं जा सकती। मुझे डर लगता है। माता जी या तुम उसको भोजन करा दो।"

"नहीं जवा!" मानिक ने समझाया, फ़क़ीर सब कुछ समझ जाते हैं। तुम उसे खाना नहीं खिलाओगी तो हमारा अनिष्ट हो सकता है। डरती क्यों हो? हम तो बाहर खड़े ही हैं। उठाओ थाली।"

जवाहर थाली लेकर पुन भीतर गयीं। पागल ने फिर

उसे देखा। वह ऐसा घबराया-मानो अभी उठकर भाग जायगा। मगर फिर क्या जाने क्या सोचकर स्तब्ध रहा। उसने आँखें नीची कर लीं। जवाहर ने थाली उसके सामने कर दी। फकीर, खाने की कोई चीज हाथ में उठाकर उससे खेलने और तरतरसा रोने लगा। और इधर, जवाहर के आँसू भी फूट निकले।

जवाहर को रोते देख पागल फकीर अपने आवेग को अधिक न रोक सका। उठकर उसने काँपती और रोती जवाहर का हाथ पकड़ लिया, पूछा—"तू कौन है, जो मेरे रोने पर रोती है? बोल—बोल!"

मैं 'बचिया' हूँ बाबा! मुझे तुम पहचानते नहीं? अब तुम बताओ कि, तुम केवल धोका हो या मेरे बाबा ही हो?"

और इसके बाद बाहर से मानिक ने और उसकी माँ ने देखा वह पागल फकीर जवाहर को गले से लगाकर बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगा। जवाहर भी तीव्र स्वर से विलप उठी।

"यह कौन है रे!" मानिक की माँ ने आश्चर्य से पूछा।

"यह भी मेरे एक पिता हैं माँ।" मानिक ने प्रसन्नता से छलक कर उत्तर दिया—"जवाहर इन्हीं के घर का प्रकाश थी। यह मुशीगंज के अच्छे जमीन्दार थे और विख्यात

ठाकुर। मगर शराब की लत ने इन्हें तबाह कर दिया। यह अपनी सारी सपत्ति ढालकर पी गये और अन्त में यहाँ तक नौबत आयी कि, लड़की घर से घबराकर भाग गयी और आप स्वय दीवाने हो गये। आज बहुत दिनों बाद दो बिछुड़े सगे मिले हैं—आह! ज़रा देखो माँ, वे किस तरह अपने हृदय का सारा प्रेम आँखों से निकाल रहे हैं।"

"तू बड़ा निर्दयी है," माँ ने सजल होकर कहा—"भला इन अभागो को इस तरह रुलाने से लाभ? इन्हे और तरहों से भी मिला सकता था।"

"नहीं माँ," गभीरता से मानिक ने कहा—"आँसुओं से भींगे हुए मिलन—व्यथित और व्यग्र, ससार में दर्शनीय होते हैं। इसीलिये मैंने इस नाटक, को इस तरह से समाप्त किया है। और, अन्त में, आज मैं तेरे चरणों को छूकर कहता हूँ, अब मैं शराब को कभी छूऊँगा भी नहीं। जवाहर के मोतियों से आँसुओं की शपथ।"



पुस्तक-मंदिर, काशी ।

द्वारा

शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

१–आँधी—बाबू जयशंकरप्रसाद । मूल्य १) ।

२–तितली—बाबू जयशंकरप्रसाद । मू० १)

३–हिंदी की श्रेष्ठ कहानियाँ—संग्रहकर्ता—भारत-सम्पादक प०नन्ददुलारे वाजपेयी-एम० ए० । मूल्य १॥)

४–कलंक—पं० विनोदशंकर व्यास । मूल्य १)

नोट—॥) भेजकर स्थायी ग्राहक बन जाने से सभी पुस्तकें पौन मूल्य में मिलेगी । और नवीन पुस्तकों की सूचना सदैव मिलती रहेगी । बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिए ।

Printed by P L Varma, at The Saraswati Press, Benares
Only last 8½ form Printed by B B Gupta,
at The Shri Sitaram Press Benares